लेखक परिचय

डॉ. हरिओम

जीन्द (हरियाणा) के ग्रामीण आंचल में 10 जनवरी 1959 को जन्में तथा कृषक परिवार की पृष्ठभूमि में आरम्भिक शिक्षा के बाद पी. एच.डी. (सस्य विज्ञान) की डिग्री चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त की। डिग्री हेतू किए गए संकर धान पर उत्तम शोध कार्य के लिए डॉ. वी.डी. कश्यप स्वर्ण पदक से सम्मानित।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के सस्य विज्ञान विभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत्त हैं। पिछले 24 वर्षों से मुख्य रूप से धान-गेहूं फसल चक्र, फसल प्रणाली व कृषि प्रणाली के उत्पादन सम्बन्धी शोध कार्य में संलग्न हैं। साथ ही देश एवं विदेश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 150 से अधिक शोध पत्रों/लेखों और 6 पुस्तकों/बुलेटिन के लेखन में योगदान किया है। अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार 'नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट' में श्रेष्ठ शोध पत्र प्रस्तुति हेतू सम्मानित।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म के लिए 14 नवम्बर 1986 को राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज के चरण कमलों में पहुंचे और दीक्षा ग्रहण की। सतगुरू की आज्ञा से 1 फरवरी 1998 से आध्यात्मिक कार्य के मिशन में संलग्न हैं। अध्यात्म को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया और 18 आध्यात्मिक पुस्तकों की रचना की।

सत्य और धर्म का अनुभव– क्या इसी जन्म में संभव है?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र (हरियाणा)

सत्य और धर्म का अनुभव– क्या इसी जन्म में संभव है?

सर्वाधिकार सुरक्षित

जून 2007

डा० हरिओम
वरिष्ठ वैज्ञानिक

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र (हरियाणा)

विषय - वस्तु

क्रम सं.	विषय	पष्ठ सं.
1.	आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य	1
2.	सत्य का दर्शन	5
3.	धर्म की अनुभूति	22
4.	जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न	47
5.	पुस्तक सूची	48

राधास्वामी।

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय।

राधास्वामी।

समर्पित

राधास्वामी दयाल परम् संत

सतगुरू ताराचन्द जी महाराज

के चरण कमलों में।

आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज की प्रेरणा से हमने संकल्प लिया है कि आध्यात्मिक कार्यों के लिए किसी से भी पैसों की सेवा नहीं ली जाएगी और किसी आश्रम की स्थापना नहीं की जाएगी क्योंकि मेरा विश्वास है कि यदि कोई आध्यात्मिक सूर्य उदय होना चाहता है तो वह इतना सक्षम है कि वह अपना रास्ता स्वयं ही बनाएगा, यह उसकी आवश्यकता है और मजबूरी भी। यदि वह स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए किसी धन और आश्रमों का मोहताज है तो मुझे ऐसा अध्यात्म स्वीकार नहीं है।

व्यक्ति का धन दीनहीन की सेवा के लिए हो, गुरू की विलासिता के लिए नहीं। आज के अध्यात्म का मार्ग यदि झोंपड़ी की तरफ नहीं जाता है तो वह गुरूओं के आलीशान महलों की तरफ तो कतई नहीं जा सकता है। सर्वभूतों, दीन-दुःखियों और अपने चारों तरफ के वातावरण में ही सतगुरू के दर्शन हों। मनुष्य का हृदय ही आश्रम हो जो हर जीव-अजीव को शांति दे और उसके लिए सुख और परोपकार की कामना करे। व्यक्ति का घर ही आश्रम हो जहां पर माता-पिता और आगन्तुक परमात्मा तुल्य हों। शान्ति, विकास और सुरक्षा का आधार कम्यून, संघ या कोई गठजोड़ नहीं बल्कि स्वयं व्यक्ति हो जो समाज व वातावरण की जरूरत को समझे। व्यक्ति के विकास से समाज और देश के विकास का मार्ग स्वयं ही निर्मित होगा। यही आध्यात्मिक साम्यवाद है जो व्यक्ति एवं घर से आरम्भ होता है और विश्वमानव या महामानव के निर्माण पर इसकी पूर्ति होती है।

अध्यात्म का कार्य करने के लिए और उसमें जीने के लिए हमें किसी मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरूद्वारे की आवश्यकता नहीं है। इस कार्य के लिए केवल एक ही इन्फरा-स्ट्रक्चर या व्यवस्था चाहिए और वह है मनुष्य रूपी शिवालय, मनुष्य रूपी देवालय। मिट्टी के एक तत्व से बने तीर्थ स्थान, मूर्ति या शास्त्र इसकी आवश्यकता नहीं हैं बल्कि परमात्मा के जीवन से भरपूर पंचतत्व से निर्मित मनुष्य का शरीर चाहिए जिसके अन्दर

स्वयं सष्टि का स्वामी निवास करता है। मनुष्य के मन और हृदय में सारे देवी-देवता, सारे तीर्थ व शास्त्र समाए रहते हैं और यहीं से इन सभी की पैदायश है।

बुल्लेशाह कहते हैं-

मन्दिर ढ़ाहदे मस्जिद ढ़ाहदे, ढ़ाहदे जो कुछ ढ़हंदा ए।
पर दिल किसी दा न ढ़ाहवी रब दिलां विच रहंदा ए।।

मेरा ऐसा मानना है कि यदि मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक सूर्य अर्थात् विज्ञानमय या आनन्दमय पुरूष की एक किरण भी संचित हो जाती है तो वहां पर हर तरह की बरकत स्वतः ही बहने लगती है। वह धरती सबको अपनी तरफ खींचने लगती है। सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक व आर्थिक चेतना का विकास होने लगता है। किसी समाज में यदि एक भी व्यक्ति ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह समाज ही नहीं बल्कि देश भी उन्नति के शिखर पर पहुंचता है। ऐसे समाज या देश को हानि पहुंचाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। उत्थल-पुत्थल अवश्य आती हैं लेकिन हर उत्थल-पुत्थल जीवन की नई-२ सम्भावनाओं व चुनौतियों को जन्म देती है। कर्मयोगी समाज के लिए यही सम्भावनाएं और चुनौतियां वरदान बनती हैं और सुनहरे भविष्य का निर्माण करती हैं।

मनुष्य के लिए शारीरिक या मानसिक धर्म अलग-२ हो सकते हैं लेकिन आत्मा या रूह का केवल एक ही धर्म हो सकता है और वह है प्रेम। सच्चा प्रेम मनुष्य को जोड़ता है तोड़ता नहीं। प्रेम अनहद है जो हर हद को पार करने का सामर्थ्य रखता है। प्रेम की कोई जात नहीं है, प्रेम किसी धर्म या सम्प्रदाय का मोहताज नहीं है। वह यह नहीं पूछता कि सामने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान, सिख है या ईसाई, ब्राह्मण है या शुद्र। वह तो केवल देना जानता है, लेना उसकी फितरत ही नहीं है। अतः इस भौतिक संसार में प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही मार्ग और प्रेम ही मंजिल है। इस मार्ग में किसी अवतार, पैगम्बर या मसीहा की बाहरी पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है लेकिन इनके आदर्शों का अनुसरण करके हमें इन्हें अपने ही अन्दर जीवित करना होगा। इनकी दैविक चेतना का अनुभव हमें अपनी ही आत्मा के अन्दर करना होगा तभी विश्व गांव का सपना साकार

हो सकेगा और धरती पर स्वर्ग बनाने की इच्छा की प्राप्ति हो सकेगी। वरना धर्म और समाज की ये दीवारें मनुष्य को हमेशा आपस में बांटती ही रहेंगी।

प्रेम सार्वभौमिक धर्म है, जिसे मनुष्य के साथ-२ पशु और पौधा भी मानता है। जीव-अजीव की यह सारी सष्टि इसी प्रेम के खिंचाव की शक्ति के कारण ही भिन्न-२ अस्तित्वों में बंटी हुई है और हर एक अस्तित्व अपनी पूर्ति के लिए दूसरे अस्तित्व के चारों ओर चक्कर काट रहा है। पौधा, पशु, पक्षी, जीव-अजीव हमारे किसी धर्म या शास्त्र को नहीं जानते, वे तो बस प्रेम की भाषा को पहचानते हैं। अतः प्रेम का धर्म (धर्मे-सीना) ही व्यावहारिक धर्म है जो मनुष्य को शाश्वत धर्म या धर्मे-हकीकत से वाकिफ करवाता है। इसलिए मानव कल्याण के इस यज्ञ में हमें किसी धन या द्रव्य की आवश्यकता नहीं है बल्कि प्रेम व पवित्र विचार की आहुति चाहिए और उसी के प्रति संकल्प की आवश्यकता है।

माता-पिता और परिवार से मिली आध्यात्मिक पष्ठभूमि ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। आध्यात्मिक मिशन का यह कार्य मेरी पत्नी और आध्यात्मिक सहयोगी श्रीमती बिमल की प्रेरणा से आरम्भ हुआ। मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज ने इस प्रेरणादायक चिंगारी को अपनी तवज्जह और दया के हाथ से ध्यान-भजन की हवा देकर ब्रह्म अग्नि में परिवर्तित किया जो हर समय योगयज्ञ की ज्योति (नूर) बनकर अन्दर जलती रहती है और अनहद नाद बनकर खुदाई कलमा (वर्ड) सुनाती रहती है। सम्भवतः इसी आध्यात्मिक चिंगारी को आंखों में देखकर मेरे सतगुरू शहनशाह ने मेरा नामकरण किया और मुझे 'प्रकाश' के नाम से पुकारने लगे। तब से वे हम दोनों को बिमलप्रकाश कहकर पुकारते थे। आज सत्संग का यह कार्य सतगुरू-मुर्शिद की दया और मेहर से ही आगे बढ़ रहा है और इसमें बिमल का विशेष योगदान है। आध्यात्मिक दष्टि से देखा जाए तो बिमल का ध्यान हमेशा ही सारी संगत में अव्वल रहा जिसकी चर्चा मेरे सतगुरू समय-समय पर संगत के बीच में करते रहते

थे।

यह मैं उन लोगों के लिए लिख रहा हूं जो स्त्री को तुच्छ व भोग की वस्तु समझते हैं और कहते हैं कि औरत आध्यात्मिक ऊँचाई को नहीं छू सकती है। मेरे सतगुरू कहते थे कि परमात्मा ने दो ही जातियां बनाई हैं, एक स्त्री व दूसरी पुरूष। यही दो जातियां पुरूष और प्रकति बनकर सष्टि का सजन करती हैं। जब स्त्री और पुरूष स्वयं का आधा अस्तित्व एक-दूसरे को समर्पित कर देते हैं तो ये अर्धनारीश्वर बनकर एक दूसरे का अंग-प्रत्यंग होकर कार्य करते हैं और एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। प्रकति जब अपना पूर्ण समर्पण कर देती है तो यह परामाया या पराप्रकति या राधा बनकर पुरूष (स्वामी) के अन्दर समा जाती है और पुरूष पराप्रकति या पराशक्ति बनकर अपने परम् शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है जहां पर लिंग-भेद, जाति-पाति और धर्म-सम्प्रदाय सभी गुण व आकार अस्तित्वहीन हो जाते हैं। ऐसे ब्रह्मरूप या सतगुरू रूप का अनुभव जो भी व्यक्ति करता है वही ब्राह्मण कहलाता है। कुण्डलीनी शक्ति के सुदर्शन चक्र और आध्यात्मिक सूर्य व चन्द्रमा के दर्शन स्वयं के अन्दर करता है वही सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाता है। ऐसे आत्मिक स्रोत के आगे सारी भौतिक सत्ता की ऐश्वर्यता नतमस्तक हो जाती है और ऐसे स्रोत का मार्ग यदि किसी सांसारिक विलासिता का मोहताज है तो यह एक विडम्बना है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे यह सब प्राप्त हो गया है बल्कि इस आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति मैं प्रयासरत हूं ताकि पूरी मानवता इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहभागी बन सके। अतः इस प्रयास रूपी यज्ञ में मैं आप सब को प्रेम और पवित्र विचार की आहुति देने के लिए आमन्त्रित करता हूं। मुझे विश्वास है कि एक दिन यह आध्यात्मिक लक्ष्य अवश्य ही फलित होगा और पथ्वी पर रहने वाले मानस का अतिमानसीकरण होगा।

प्रस्तुत संकलन इसी आध्यात्मिक मिशन की जागति व पूर्ति के लिए किया गया है। हमें आशा है कि यह संकलन एक क्रियात्मक, रचनात्मक और दिव्यात्मक अध्यात्म को पाठकों के हृदय में प्रज्जवलित करेगा और आत्मिक धर्म तथा सच्चे अध्यात्म की खोज करने में सहायता करेगा।

राधास्वामी।

सत्य का दर्शन

सत्य कभी किसी आश्रम व मठ में प्रकट नहीं हुआ। सत्य कभी किसी शास्त्र, किसी मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघर का मोहताज नहीं रहा। सत्य का बीज वहीं फलता-फूलता है जहां इसके अनुकूल आबोहवा होती है। सत्य आत्मा का गुण है जो अनुकूल वातावरण मिलते ही झरने की तरह स्वतः ही बहने लग जाता है। भीड़, पैसे और ऊँची सभ्यता का गुलाम नहीं है सत्य। जहां ये चीजें होती हैं वहां सत्य दब जाता है इनकी चमक-दमक के नीचे। किसी की बपौती नहीं है सत्य जो उसके कहने से उसकी औलाद या रिश्तेदारों को ट्रांसफर हो जाए। वस्तु नहीं है सत्य जिसे कोई गुरू स्वयं का अधिकार बनाए और उसे वसीयत बनाकर बांटे। वोट या ट्रस्ट का फैसला नहीं है सत्य। सत्य को कहीं चलकर जाने की आवश्यकता नहीं है, इसका बीज हर स्थान पर मौजूद है। यह सबकी सांझी दौलत है। इस दौलत का सच्चा ग्राहक यदि कोई है तो वह है प्रेम। जहां प्रेम प्रकट होता है वहां सत्य को आना ही पड़ता है।

आज समाज में जो हालात चल रहे हैं उन्हें देखकर कुछ लोगों के दिल में यह शंका रहती है कि शायद संसार का अंत निकट है। मन में एक प्रश्न रहता है कि इस समय संसार में जो अवस्था चल रही है वह कैसी है? इसके बारे में समय-2 पर भविष्यवाणियाँ भी की गई हैं और की जा रही हैं। वर्ष 1999 में दुनियां का विनाश बताया गया था। ये शंका और भी मजबूत हो जाती है जब देखते हैं कि दुनिया में आपसी कलह बढ़ता ही जा रहा है। काफी दिनों से युगोस्लाविया में लगातार

गोलाबारी चल रही है। अग्नि का खेल चल रहा है। कुछ देश मिलकर वहां पर लगातार आक्रमण कर रहे हैं। भारत और पाकिस्तान की भी कुछ ऐसी ही हालत चली हुई है। भारत-पाकिस्तान और युगोस्लाविया को ही क्यों लेते हो, हर आदमी के अन्दर एक युद्ध चला हुआ है। घणा और नफरत का युद्ध। एक दूसरे को लूटने का, भ्रष्टाचार व अवसरवादिता का युद्ध।

महाभारत के युद्ध को लेकर श्रीमद् भगवद्गीता का जो ग्रंथ रचा गया है वह इसी कारण से हमेशा वेलिड रहेगा, उसकी मान्यता रहेगी क्योंकि यह ग्रंथ युद्ध के ऊपर लिखा गया है। आदमी के दिमाग में युद्ध कभी समाप्त नहीं हुआ और न ही कभी इसकी कोई सम्भावना लगती है। जब तक एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा है, युद्ध की भावना हमेशा बनी रहती है। आत्मसंघर्ष की भावना से बच पाना कठिन है। यदि संघर्ष खत्म हो जाएगा तो रचना का विकास भी रूक जाएगा। वह दिन प्रलय का दिन समझा जाएगा। जिस दिन ब्रह्माण्ड का ऊर्जा स्रोत समाप्त हो जाएगा, उसी दिन संघर्ष भी समाप्त हो जाएगा। वह दिन 'डे आफ जजमेंट' होगा, 'डूमज डे' होगा। प्रकति की सारी शक्तियां साम्य अवस्था में आ जाएंगी, न कोई उतार न चढ़ाव। सारा संसार अंधकार के प्रलय में चला जाएगा, ऐसा सांख्य शास्त्र और ऋग्वेद कहता है। शास्त्र कहता है कि त्रिगुणात्मक प्रकति के इस संघर्ष से वही बच सकता है जिसने अपने जीवन में इस अंधकार को पार कर लिया है, जो ज्योतिस्वरूप परमात्मा में जाकर समा गया है। जिसने अपनी आत्मा को शब्द-ब्रह्म में लीन कर लिया है। कबीर साहब कहते हैः

जाप मरै अजप्पा मरै अनहद भी मर जाए।
सुरत समानी शब्द में ताहि काल न खाय।।

इस संसार में रहते हुए हर आदमी जिन्दगी के साथ युद्ध करता रहता है, संघर्ष करता रहता है। इसलिए साधारण मनुष्य के लिए हमें गीता से ऊँचा ग्रंथ कोई नहीं मिलेगा। यह ग्रंथ हमें बताता है कि युद्ध के समय में किस तरह से आदमी का व्यवहार हो। वह अपने सही धर्म का चुनाव करे और विचार करे कि जीवन की विकट से विकट परिस्थिति में उसका क्या कर्त्तव्य हो।

गीता में धर्म की परिभाषा के बारे में बताया गया है। गीता के अट्ठारहवें अध्याय में कहा गया है कि स्वभाव से उत्पन्न जो कर्म है वही मनुष्य का धर्म है। यानि एक आदमी खेती करता है, एक व्यापार करता है, एक मोची का काम करता है या सर्विस करता है-वही उसका धर्म है। फिर एक ही कर्म करने वालों का स्वभाव भी अलग-अलग होता है, जितने आदमी इस दुनिया में हैं उन सबका स्वभाव अलग है तो उनका धर्म भी अलग हुआ लेकिन प्रश्न उठता है कि जब हर आदमी का धर्म अलग है तो हिन्दू धर्म, मुस्लिम धर्म आदि धर्म क्यों बन गए। ये धर्म हमने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए खडे कर लिए हैं। इसलिए कष्ण महाराज अर्जुन को कहते हैं - **परित्याज्य सर्वधर्मा।** हे अर्जुन! सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ। वे हमें कर्म छोड़ने के लिए नहीं कहते बल्कि झूठे धर्म के उन पोतडों को उतारकर फेंकने के लिए कहते हैं जो हमने अपने चारों तरफ लपेट लिए हैं।

अर्जुन श्री कष्ण से पूछते हैं कि मेरा धर्म क्या है? अब तक मैं क्षत्रिय के धर्म को मानता था। मैं कहता था कि क्षत्रिय को दूसरों की रक्षा के लिए, न्याय की रक्षा के लिए हमेशा लड़ाई लड़नी चाहिए, यही है क्षत्रिय का धर्म लेकिन आज मैं युद्धभूमि में आकर विचलित हो गया हूं। आज जब क्षत्रिय धर्म का पालन करने का सही समय आया है, न्याय

की रक्षा करने का वक्त आया है तो देखता हूं कि मेरे सामने सभी मेरे अपने खडे हैं, मेरे पितामह, मेरे भाई और रिश्तेदार खड़े हैं। मैं उनका वध करके किस धर्म की प्राप्ति कर सकता हूं? यह तो पाप है। यह धर्म की रक्षा नहीं, धर्म का वध है। मुझे ऐसा स्वर्ग भी नहीं चाहिए, ऐसा धर्मराज्य नहीं चाहिए जिसकी जडें खून से सींची जाएं। अर्जुन पूछते हैं कि हे कष्ण! आज मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि मेरा धर्म क्या है। क्षत्रिय बनकर लड़ना या संसार से दूर जाकर मोक्ष की प्राप्ति करना। जिसे मैं अब तक अपना धर्म समझता था वही अब मुझे अधर्म दिखाई दे रहा है।

कहने का अर्थ यही है कि जो लडाई अर्जुन के दिमाग में चल रही थी, अपने पराए की, न्याय-अन्याय की, वह लड़ाई हर आदमी के अन्दर आज चली हुई है। खुद अपने आदमी पराये बनकर छीना-झपटी कर रहे हैं। यही महाभारत में आता है, इसलिये यह ग्रंथ हमेशा मान्य रहेगा और दिशा भी देता रहेगा। श्री कष्ण महाराज इसका निर्णय करते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन! जो तू करता है वह तेरी त्रिगुणात्मक प्रकति करती है। आत्मा का इससे कुछ लेना देना नहीं, आत्मा इससे निर्लेप रहती है इसलिए तूं आसक्ति रहित होकर कर्म कर। युद्ध कर और युद्ध करता हुआ मेरा स्मरण कर-**माम् अनुस्मर युद्ध च।** फिर कहते हैं-**माम् आश्रितम्** अर्थात् मेरी शरण में रहते हुए अपने सारे कर्म मुझे समर्पित करता जा। इससे तुझ पर कोई पाप नहीं लगेगा। कोई दोष नहीं लगेगा।

संत वाणी कहती है -

पहले बुरा कमाय कर बांधी विष की पोट।
कोटि कर्म पल में कटैं जब आया सतगुरू की ओट।।

जब हम सतगुरू की शरण में जाकर अपने आपको समर्पित कर देते हैं तो कोटि कर्म पल में कट जाते हैं। लेकिन कैसे? जब

सच्चाई के साथ समर्पण हो जाता है तो पश्चाताप के आंसू और विरह की अग्नि सभी दुष्कर्मो को जलाकर राख बना देते हैं। जरूरत है, सच्चे व पूर्ण समर्पण की। उसके बाद कुछ बाकी नहीं रह जाता लेकिन वासनाओं और लालच में फंसे हुए कुछ व्यक्ति गीता की इस शिक्षा की व्याख्या अपने ही तरीके से करते हैं। एक व्यक्ति जो हर तरह से खुशहाल है। परमात्मा ने उसे हर तरह की मौज बख्शी है। उसके पिता ने बंटवारे में उसे जो हिस्सा दिया उससे वह संतुष्ट नहीं हुआ। अपने पिता से कहने लगा कि तू धतराष्ट्र है, अन्याय करता है मेरे साथ। मैं न्याय प्राप्त करने के लिए कुछ भी कर सकता हूं। गीता कहती है कि अन्याय के लिए लडना चाहिए, कोई अपना पराया नहीं हैं। यह बात किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि अनेकों की है।

गीता कहती है कि अपना अधिकार प्राप्त करो। उसके लिए किसी से भी टकराने की जरूरत पडे तो भय नहीं है। न्याय के लिए लडो, सच्चाई के लिए लडो, पुण्य के लिए लड़ो। कोई बात नहीं। लेकिन इसका फैसला कौन करे कि न्याय क्या है? सच्चाई क्या है? अच्छाई क्या है? ये सब सापेक्ष बातें हैं। एक के लिए जो न्याय है जो सच्चाई है, जरूरी नहीं कि दूसरे के लिए भी वही सच्चाई हो। एक व्यक्ति देश के लिए अपना फर्ज सर्वोपरि समझता है तो दूसरा धर्म के लिए। एक व्यक्ति अपने मजहब को सच्चाई समझता है तो दूसरा अपने मजहब को। एक व्यक्ति खुद के भले को आवश्यक मानता है तो दूसरा मानवता की भलाई के लिए खुद की बलिदानी भी कर सकता है। क्या अच्छा है क्या बुरा, इसका फैसला कौन करे? क्या इसका फैसला राजनेता करेंगे? क्या इसका फैसला पुरोहित करेंगे? किसी का इष्ट भगवान है तो किसी का जीसस और किसी का

हजरत। कोई व्यक्ति अपने माता पिता की सेवा को सब देवताओं की पूजा-अर्चना से ऊँचा समझता है तो कोई व्यक्ति मोक्ष प्राप्ति के लिए उन्हें दुःख में छोडकर, त्यागकर चला जाता है। एक व्यक्ति मानवता में परमात्मा के दर्शन करता है तो दूसरे को यह संसार शैतान का राज्य नजर आता है। कहां जाएं सच्चाई जानने के लिए। क्या शास्त्र सच्चाई का वर्णन करते हैं? ये भी तो मनुष्य के बनाए हुए हैं। फिर कोई शास्त्र किसी देव या अवतार की पूजा को श्रेष्ठ बताता है तो दूसरा किसी अन्य को।

मीमांसा दर्शन कहता है कि वेदों को छोडकर सब धर्म झूठे हैं, सब धर्म-अवतार झूठे हैं। केवल वेद अनादि हैं, उनकी वाणी अनादि है। उस वाणी को आधार मानकर सही गलत का फैसला करना चाहिए। फिर मीमांसक एक प्रश्न उठाता है जिसका जवाब शायद कोई धर्म गुरू नहीं दे सका है। मीमांसक कहता है कि सभी धर्म अपने गुरुओं को सर्वज्ञ मानते हैं और कहते हैं कि उन्हें हर चीज का सम्पूर्ण ज्ञान है। वे परमात्मा में पूरी तरह से लीन हो चुके है। यह दर्शन उनसे पूछता है कि यदि आपके गुरू सर्वज्ञ हैं तो आपके ही धर्म या पंथ के जितने गुरू हुए हैं उनकी वाणी में अन्तर क्यों है? यदि उनके अन्दर परमात्मा का अवतरण हुआ और उनकी वाणी परमात्मा की वाणी हुई तो परमात्मा दो सर्वज्ञ गुरूओं के अन्दर अलग-अलग वाणी क्यों बोलता है? इसलिए तुम सभी धर्म वाले और तुम्हारे गुरू झूठे हैं। तुम ठगते हो। तुम चोर हो परमात्मा के। सभी धर्मो वाले कहते हैं कि उनके गुरू या पैगम्बर सर्वज्ञ थे तो फिर सभी धर्मो में अलग-अलग बातें क्यों हैं? सर्वज्ञ का ज्ञान किसी देश या काल में बदल नहीं सकता है।

मीमांसा दर्शन षड्दर्शन में से एक दर्शन है जो जैमिनी ऋषि ने दिया। मीमांसक फिर प्रहार करता है और पूछता है कि तुम कहते हो कि परमात्मा में समाधिस्थ होने में जो आनंद मिलता है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वहां वाणी मौन हो जाती है। उपनिषद् कहता है-**यतो वाचो निवर्तन्ते** अर्थात् वहां वाणी की गम नहीं है। उसके बारे में जो भी बोला जाएगा वह अधूरा होगा। सही वर्णन नहीं होगा। मीमांसक पूछता है कि फिर तुम क्यों बोलते हो? जो भी बोला जाएगा वह झूठ होगा। कहते हो कि वहां 'कुछ नहीं' है। फिर उस 'कुछ नहीं,' या शुन्य को 'कुछ' क्यों बनाते हो।

चार्वाक और कार्ल मार्क्स को मानने वाले कहते हैं कि आत्मा परमात्मा कुछ नहीं है, जो है वह पदार्थ ही है। इसके परे कुछ नहीं है। जो आंखों से दिखता है, बुद्धि की तर्क शक्ति से जो प्रत्यक्ष है वही सत्य है। चेतना पदार्थ का ही बाई-प्रोडक्ट है। पदार्थ का ही परिणाम है। महात्मा बुद्ध कहते हैं कि दर्शन, आत्मा परमात्मा के पचड़े में पड़ना व्यर्थ है। ये संसार दुःखों का घर है। सभी किसी न किसी दुःख से पीड़ित हैं। उनके दुःख का निवारण आपका दर्शन, आत्मा-परमात्मा का ज्ञान नहीं कर सकता। बुद्ध पूछते हैं कि आपके सामने कोई व्यक्ति घायल पड़ा है। उसको किसी ने घायल कर दिया है और वह व्यक्ति भाग गया है। आप क्या करेंगे? क्या आप मारने वाले के पीछे भागेंगे और उसके बारे में पूछताछ करेंगे कि वह कौन था, कहां का रहने वाला था। तुम्हारा सबसे पहला कर्त्तव्य उस व्यक्ति की मरहम पट्टी करना और उसकी सेवा करना है ताकि वह जल्दी से जल्दी उस दुःख से छुटकारा पा सके। महात्मा बुद्ध पूछते हैं कि संसार के प्राणियों का दुःख दूर करने का यदि कोई उपाय है तो बताओ नहीं तो

क्यों आत्मा परमात्मा का राग आलापते हो? क्यों दर्शन के दुरूह दलदल में भोले-भाले लोगों को फंसाते हो। यह संसार दुःखों का घर है। दुःख का कारण वासना है। सब रिश्ते-नाते भ्रम हैं, झूठ हैं। इसलिये इस संसार से पलायन कर जाओ और जीवन में मध्यम रास्ता अपनाकर निर्वाण प्राप्ति करो। यही है महात्मा बुद्ध की मुख्य शिक्षा व चार आर्य-सत्य का निष्कर्ष।

बुद्ध के विपरित गीता दर्शन कहता है कि न्याय प्राप्त करने के लिए संसार में रहते हुए अन्याय से युद्ध करो। सत्य की असत्य पर विजय हो इसलिए अवतार पथ्वी पर जन्म लेकर आता है। बुराई को खत्म करने और सच्चाई को स्थापित करने के लिए आता है अवतार। पापियों का नाश करने के लिए आता है अवतार। राधास्वामी सत्संग व्यास के द्वितीय गुरू महाराज सावन सिंह जी कहते हैं कि अवतार संसार रूपी जेल को सुंदर बनाने के लिए आता है ताकि इसमें ऐसे राज्य की स्थापना हो जिससे संसार के प्रति आपकी आसक्ति बढ़े। स्वयं धन-दौलत, महल और राजसी ठाठ-बाट लेकर आता है अवतार ताकि दूसरे लोग भी उन भोगों की तरफ दौड़ें और जन्म-जन्मों के लिए इस जीव को इस संसार रूपी जेल में कैद किया जा सके। वे कहते हैं कि अवतार काल के दूत होते हैं जो दुनियां को मुक्त करने का रास्ता नहीं बताते बल्कि उन्हें सोने की जंजीरों की मजबूत दिवारों की जेल में कैद करने का साधन पैदा करते हैं। केवल शब्द-भेदी सतगुरू ही इस जेल से बाहर जाने का रास्ता बता सकते हैं। माना कि पापी को आपने मार दिया तो क्या पाप संसार से खत्म हो गया। एक कातिल या अपराधी को मारने से क्या दुनिया से अपराध समाप्त हो जाएगा?

बुराई को दबाने से कभी बुराई समाप्त नहीं हो सकती। मारने से दमन होता है और दबाई हुई चीज उचित वातावरण मिलते ही और भी अधिक ताकत के साथ उभरती है। संसार में इतने अवतार आए हैं क्या पाप खत्म हुआ है? क्या बुराई समाप्त हुई है? अच्छाई-बुराई, पाप-पुण्य, सुख-दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। चारपाई का एक पैर खींचो तो चारों पैर अपने आप खिंच कर चले आते हैं। जब तक हम काल-माया के मण्डल में रहते हैं और काल व स्थान से हमारा सम्बन्ध बना रहता है तब तक प्रकाश-अंधकार, दिन-रात, सुख-दुःख से छुटकारा नहीं पाया जा सकता है। इनके प्रभाव को कम अवश्य किया जा सकता है।

हम तब तक स्थूल रचना में जीवित रह सकते हैं जब तक सूर्य-चांद हैं, सितारे हैं क्योंकि वे ही हमारी ऊर्जा के साधन हैं और जब तक सूरज-चांद व सितारे रहेंगे तब तक वे घूमते भी रहेंगे क्योंकि ऊर्जा कभी एक स्थानीय या एक देशिय नहीं हो सकती है और यदि ब्रह्माण्ड के ये पिण्ड स्थिर नहीं रह सकते है तो काल चक्र भी कभी स्थिर नहीं हो सकता। यदि ये प्राकतिक शक्तियां और काल-चक्र स्थिर नहीं हो सकते हैं तो हम किस तरह अस्थिरता से बच सकते हैं। आप कैसे प्रकति के बदलाव से अछूते रह सकते हैं? जबकि आप स्वयं प्रकति का एक अटूट हिस्सा हैं। सूर्य, चन्द्रमा व पथ्वी की स्थिति जब समुन्द्र में ज्वार-भाटा उठा सकती है तो हमारा शरीर जो अधिकतर पानी से बना हुआ है, क्या वह इनके प्रभाव से बच सकता है?

आत्मा एक गुण है इसलिए आत्मा का कोई भार नहीं हो सकता। हम पूरी तरह प्रकति हैं। हमारा शरीर, हमारा मस्तिष्क पूरी तरह समय, स्थान व संस्कारों से प्रभावित होता है तो हम इस रचना में रहते हुए किस

तरह से सुख-दुःख, पाप-पुन्य व प्रकाश-अंधकार से छुटकारा पा सकते हैं। कुछ हद तक तटस्थ जरूर हुआ जा सकता है लेकिन क्या आपका शरीर खाने के प्रति तटस्थ हो सकता है? क्या आपका शरीर सांस लेने के प्रति तटस्थ हो सकता है? यदि आप खाना खाएंगे तो पाचन क्रिया अवश्य कार्य करेगी। यदि आप सांस लेंगे तो आपके फेफडे अवश्य हरकत में आएंगे। यदि आप विचार करेंगे तो आपके मस्तिष्क में चेतना का प्रवाह और प्रभाव अवश्य होगा। एक विचार सारे शरीर की चेतना को प्रभावित करने लगता है। यहां प्रकति का अधिकार सर्वोपरि है। जितनी अधिक चेतना और चेतना का केन्द्र बिन्दू होगा, उतनी ही अधिक वातावरण के प्रति हमारी संवेदनशीलता होगी। यदि आप पत्थर हैं, यदि आपमें जीवन नहीं है तब आप वातावरण के प्रति काफी हद तक सहनशील हो सकते हैं। सर्दी-गर्मी के प्रति तटस्थ हो सकते हैं लेकिन फिर आपके विकास की संभावना भी समाप्त हो जाएगी।

हम चेतना के अति बाहरी स्तर पर बैठे हुए हैं। यहां का नियम बदलाव और भिन्नता है। इसलिये जीसस कहते हैं कि तटस्थ होने की जरूरत नहीं है। अन्दर के बच्चे को जगाओ जो निर्दोष है, निष्पाप है। वे कहते हैं कि बच्चा बनकर ही परमात्मा के राज्य में प्रवेश मिल सकता है। अन्दर के प्रेम को जगाओ। प्रेम के द्वारा ही इस परिवर्तनशील और नाशवान संसार से मुक्त हुआ जा सकता है। चेतना की उस गहराई में उतरा जा सकता है जहां कोई हलचल नहीं है, केवल शांति है। उस केन्द्र पर रहते हुए बाहरी बदलाव के प्रति साक्षी हुआ जा सकता है।

यहां प्रकति मां का साम्राज्य है। उसकी अनसुनी नहीं की जा सकती है। यही माया रूप है क्योंकि इसमें हर क्षण बदलाव है। स्थिरता नहीं है। यही बौद्ध धर्म का विज्ञानवाद है। इसलिये बौद्ध मत

इससे आगे का वर्णन नहीं कर सका। जो इस क्षण सत्य है वही अगले क्षण झूठ हो जाता हैं, जो संभावना अभी थी वह अब नहीं है। जिस स्थिति पर सूर्य अभी था, पथ्वी अभी थी, वे उस स्थिति पर अब नहीं हैं। एक सैकिण्ड के छोटे से समय में पथ्वी 30 किलोमीटर आगे छलांग लगा जाती है। सूर्य किसी दूसरे सूर्य की तुलना में इतनी ही देर में 200 किलोमीटर अपने रास्ते पर आगे बढ़ जाता है। आकाश गंगाए दौड़ रही हैं प्रकाश की गति से। कहां जाएगा यह ब्रह्माण्ड। सब कुछ भागता जा रहा है। कुछ भी स्थिर नहीं है। इसी आधार पर वैज्ञानिक आईनस्टीन ने सापेक्षिता का सिद्धांत दिया। अतः यहां परमात्मा होने का दावा मत करो। प्रकति के इस मण्डल में जिसने भी स्वयं को भगवान माना उसी का काल चक्र ने मर्दन किया। बड़े-बड़े संत-महात्मा अनजाने ही इसकी भेट चढ़ गए।

केवल सतगुरू का आसरा इस अहंकार से छुटकारा दिला सकता है। समय के परिवर्तन के प्रति सजग कर सकता है। इसलिए राधास्वामी पंथ में कहा जाता है कि सतगुरू की मौज में रहो। सुख-दुःख को सतगुरू की दया और मौज समझो। सुरत-शब्द की कमाई करो तभी इस काल चक्र के दुष्चक्र से बाहर निकला जा सकता है। प्रकाश और अंधकार की आंख-मिचौनी से बाहर जाया जा सकता है। ऐसे लोक में आश्रय मिल सकता है जहां बिन सूरज और चन्द्रमा के सदा उजियारा रहता है। अस्तित्व की धुरी है वह। अब हम परिधि पर चक्र लगा रहे हैं, भटक गए हैं, भूल गए हैं अपने घर का रास्ता। नकली घर को अपना घर मान लिया है और सुख-दुःख के इस भंवर में फंस गए हैं।

मीमांसक कहता है कि वेद-वाणी ही अंतिम सत्य है। ओशो कहते हैं कि वेद उपनिषदों में निन्यानवे फिसदी व्यर्थ की बातें हैं।

कुड़ा-कर्कट भरा हुआ है उनमें। अतीत का भय छोड़ो, भविष्य की चिंता मत करो और खो जाओ वर्तमान में, यही सत्य है। कहते हैं कि पुराने संस्कार आगे बढ़ने में सबसे बड़ी रूकावट हैं। पैरों की बेड़ियां हैं ये रूढ़ीवादी संस्कार। वे कहते हैं कि फूल को देखो और खो जाओ उसकी सुदंरता में। केवल देखो, विचार मत करो। यदि मन में एक भी विचार उठा तो खो जाएगा वह आनन्द जो होने का आनन्द है, कुछ बनने का या सोचने का नहीं। देखने में होना (Being) है और सोचने में बनना (Becoming), होना आत्मगत (Subjective) अनुभव है और बनना वस्तुगत (Objective) अनुभव है। श्री अरविन्द मनुष्य के लिए आत्मगत अनुभव को अति आवश्यक मानते हैं।

शंकराचार्य कहते हैं कि सत्ता के तीन रूप होते हैं-प्रातिभाषित, व्यावहारिक और परमार्थिक। रस्सी को सांप समझना प्रातिभाषित है। संसार को ही असलियत समझना या तालाब के पानी में चन्द्रमा के बिम्ब को असली चन्द्रमा समझना प्रातिभाषित है। व्यक्ति रस्सी को सांप समझ लेता है, डर जाता है उसे पसीना आ जाता है, बुखार हो जाता है। इस वक्त उसके लिए वह रस्सी, रस्सी नहीं बल्कि सांप है। यही उसके लिए सत्य है। जब उसे मालूम होता है कि यह सर्प नहीं, रस्सी है तो उसका भ्रम मिट जाता है। इसी प्रकार ये संसार भी एक सपना है, भ्रम है। इसे ही हम असली समझ लेते हैं। एक व्यक्ति सपने में डरा हुआ है, सहमा हुआ है। डर से चिल्लाने लगा है या सपने में किसी मोहिनी के मोह में जकड़ा गया है लेकिन जब आँख खुलती है तो उसे असलियत का ज्ञान होता है कि यह एक भ्रम था। एक मायाजाल था। स्वप्न प्रातिभाषित रूप है और जागति में आना व दुनियां के साथ व्यवहार करना सत्ता का व्यावहारिक रूप है। अपनी

जगह दोनों ही सत्य हैं, दोनों ने अपना प्रभाव डाला है। पहली दष्टि से देखते हैं तो दूसरा रूप असत्य है क्योंकि स्वप्न में केवल रस्सी का सांप या मोहिनी का बंधन ही सत्य है। जब दूसरी दष्टि से देखते हैं तो पहली अवस्था असत्य मालूम पडती है।

शंकराचार्य जी कहते हैं कि जब हम परमार्थिक (आध्यात्मिक) दष्टि से देखते हैं तो पहले वाली दोनों अवस्थाएं असत्य प्रतीत होती हैं। जब मनुष्य समाधिस्थ अवस्था में जाता है तो प्रातिभाषित और व्यावहारिक दोनों ही मायाजाल प्रतीत होते हैं क्योंकि इस रचना से पहले भी यह संसार नहीं था और प्रलय के बाद भी यह अपने मूल रूप में विलीन हो जाएगा और रह जाएगा केवल परमार्थिक रूप। गहरी निद्रा में जाने पर स्वप्न और जागति दोनों ही असत्य है लेकिन अपनी जगह बरतने पर तीनों ही सत्य प्रतीत होते हैं। संसार सत्ता का स्थूल रूप है, स्वप्न उसका सूक्ष्म और सुषुप्ति कारण रूप है। सुषुप्ति में बेहोशी होती है लेकिन जब यही बेहोशी की चेतना अभ्यास करते करते होश में बदल जाती है तो वह तुरियातीत अवस्था है। वह असम्प्रज्ञात समाधि है। वही मोक्ष है। यह अनुभव है अद्वैत वेदान्त का जो सच्चाई को या ब्रह्म को तीन रूपों में देखता है लेकिन आध्यात्मिक या परमार्थिक ज्ञान होने के बाद सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म नजर आने लगता है-**अयमात्मा ब्रह्म।** शंकर कहते हैं कि शास्त्रों का ज्ञान भी मायारूप है, बाहरी वस्तु है लेकिन परम् अवस्था तक पहुंचने के लिए इनको साधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

शंकराचार्य के माया सिद्धांत के अनुसार माया एक दष्टि से सत्य है लेकिन दूसरी दष्टि से असत्य है और यदि परमार्थिक दष्टि से देखा जाए तो न सत्य है और न ही असत्य है बल्कि अनिर्वचनीय है, जिसका

वर्णन नहीं किया जा सकता है। इसी बात को जैन दर्शन में टुकडों में बांट कर कहा गया है। यह दर्शन कहता है कि किसी भी वस्तु के सात रूप होते हैं जिसे सप्तभंगीनय या अनेकान्तवाद या स्याद्वाद कहा जाता है।

श्री अरविन्द सत्ता का वर्णन तीन स्तर पर करते हैं। उनका साहित्य पश्चिम के सबसे महान दार्शनिक जर्मनी के हिगल से प्रभावित है। हिगल के बारे में एक कहावत प्रसिद्ध है कि वह राजाओं का दार्शनिक (Philosopher of kings) था और दार्शनिकों का राजा (King of philosophers) था। उसने अध्यात्म को एक सिद्धान्त दिया-द्वन्द्वात्मक सिद्धांत (डायलेक्टिक मैथड)। सुकरात ने भी इसे अपनाया था। यह ऐसा सिद्धान्त है जो चेतना के विकास का वर्णन करता है। हिगल श्री अरविन्द की तरह कहता है कि विरोधी शक्तियां हमारी सहायता करती हैं। उनकी सहायता के बिना यह संसार आगे नहीं बढ सकता है। नेचर इज दा रजल्ट आफ राईज एण्ड फाल आफ अपोजिटस। हिगल ने इस सिद्धान्त का वर्णन मानसिक स्तर तक किया है। उसने बौद्ध के विज्ञानवाद की तरह विचार को ही अन्तिम सत्य माना है। उसके अनुसार परमात्मा भी एक विचार है, अन्तिम विचार अर्थात् अंतिम सत्य। यह सष्टि विचार से उत्पन्न होती है और विचार में ही जाकर समा जाती है। इसका विकास तीन चरणों में होता है- वाद (थिसेस), प्रतिवाद (एन्टिथिसेस) और संवाद (सिन्थेसिस)। किसी भी विकास में ये तीनों चरण बारी-बारी से आते हैं। तीनों ही एक दूसरे को जन्म देते हैं तो एक-दूसरे के विरोधी भी हैं। श्री अरविंद का समग्र योग भी वाद, प्रतिवाद और संवाद की ही एक विस्तत व्याख्या है। कार्ल मार्क्स ने भी इसी द्वन्द्वात्मक सिद्धांत को आधार बनाकर समाजवाद की व्याख्या की।

इसलिये सत्य की परिभाषा अलग-अलग व्यक्तियों और समय के लिए भिन्न-भिन्न हो सकती है, हर नीति शास्त्र, न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र अलग मापदण्ड निर्धारित करता है सत्य की जांच करने के लिए। जो हिन्दू को मान्य है वह मुसलमान को मान्य नहीं है। जो मुसलमान को मान्य है वह इसाई के लिए मान्य नहीं है। सत्य पल-पल बदलने वाली वस्तु नहीं है। वह तो देश व काल से परे की वस्तु है। क्या सत्य को पैदा किया जा सकता है? क्या सत्य मनुष्य के हाथों की कठपुतली है? नहीं। लेकिन मनुष्य और समाज के ठेकेदारों ने ऐसा समझ लिया है।

हर मनुष्य की आंखों पर अलग-अलग रंग का चश्मा चढ़ा हुआ है। उसे एक ही वस्तु का अलग-अलग रंग नजर आता है। वह एक ही वस्तु के ऊपर अपनी वासना का रंग आरोपित कर देता है। सत्य ढक जाता है, रह जाता है सत्य का भ्रम, एक कल्पना, सत्य की परछाई। उसी परछाई को धर्मगुरू अलग-अलग नाम दे देते हैं। इस प्रकार संसार में अनेक धर्मों और देवों का जन्म हो गया तथा मनुष्य मौलवी, फादर या पुरोहित बनकर अपना हित साधने लगा।

सत्य कभी किसी आश्रम व मठ में प्रकट नहीं हुआ। सत्य कभी किसी शास्त्र, किसी मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघर का मोहताज नहीं रहा। सत्य का बीज वहीं फलता-फूलता है जहां इसके अनुकूल आबोहवा होती है। सत्य आत्मा का गुण है जो अनुकूल वातावरण मिलते ही झरने की तरह स्वतः ही बहने लग जाता है। भीड़, पैसे और ऊँची सभ्यता का गुलाम नहीं है सत्य। जहां ये चीजें होती हैं वहां सत्य दब जाता है इनकी चमक-दमक के नीचे। किसी की बपौती नहीं है सत्य जो उसके कहने से उसकी औलाद या रिश्तेदारों को

ट्रांसफर हो जाए। वस्तु नहीं है सत्य जिसे कोई गुरू स्वयं का अधिकार बनाए और उसे वसीयत बनाकर बांटे। वोट या ट्रस्ट का फैसला नहीं है सत्य। सत्य को कहीं चलकर जाने की आवश्यकता नहीं है, इसका बीज हर स्थान पर मौजूद है। यह सबकी सांझी दौलत है। इस दौलत का सच्चा ग्राहक यदि कोई है तो वह है प्रेम। जहां प्रेम प्रकट होता है वहां सत्य को आना ही पडता है।

खुद खुदा को घर बुलाए कौन है, वह प्रेम है।
बादशाहत को छुड़ाए कौन है, वह प्रेम है।।

जब मन की आंखों पर लगा चश्मा हट जाता है फिर प्रकट होता है सत्य। दष्टि भ्रम मिटते ही खिल उठता है सत्य। जब सत्य जाग्रत होता है तो हृदय व मन प्रकाश से भर जाते हैं। चमक उठता है अंधकार में छिपा हुआ सूर्य जो अनादिकाल से चमक रहा है लेकिन फिर भी ओझल है हमारी आंखों से। ***आदित्यवत् प्रकाशयति तत् परम्।***

वह परम् तत्व हमेशा प्रकाशमान रहता है हमारे अन्तर में। जब यह अनुभव उतरने लगता है तो शरीर व मन का रोम-रोम परमात्मा या सतगुरू के प्रेम और करूणा से भर उठता है। हर जगह एक ही रूप नजर आता है-सतगुरू स्वरूप या निज स्वरूप। **वासुदेवः सर्वम् इति।** यह रूप किसी आकार में नहीं बांधा जा सकता है। इसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता है। उसके बाद सभी धर्म, पीर-पैगम्बर, अवतार एक ही परम् तत्व के अलग-अलग रूप व आकार नजर आने लगते हैं। खुद का अनुभव पुकार-पुकार कर कहने लगता है कि उठो! जागो! वह परम् तत्व का अवतार तुम स्वयं हो। नर-नारायणी देह तुम स्वयं हो। इसके बाद सभी पूर्व आग्रह, पूर्व संस्कार, पूर्व धारणाएं कोयला और कूड़ा-कर्कट बनकर जलने लगते हैं योग यज्ञ की उस अग्नि में

जो हमारे अन्दर परमात्मा की ज्योत बनकर जल रही है। मुर्शिद-ज्योति बनकर अंधकार का पान कर रही है। यह सब इसी जन्म में अनुभव किया जा सकता है, आवश्यकता है आत्मिक कली को खिलाने की, जो उचित वातावरण मिलते ही खिलने लगती है और चारों तरफ सुगंध फैलाने लगती है।

जब तक हम द्रव्य (संसार) को सर्वोपरि समझते हैं, कर्मकाण्ड में फंसे रहते हैं तब तक उस अनाम अस्तित्व को टुकड़ों-टुकड़ों में खण्डित करके देखते रहते हैं। मानव को मानव से बांटते रहते हैं, साम्प्रदायिकता का जहर घोलते रहते हैं। आदम से पहले न कोई जीसस है, न कष्ण, न हजरत, न पीर है। केवल परम तत्व का अनामी और अखण्डित रूप है। मुर्शिद का शुद्ध व पाक स्वरूप है जिसमें कोई लाग-लपेट नहीं है। प्रेम और केवल प्रेम है। यही अन्तिम सत्य है, न्याय और अच्छाई का आधार है। यही आस्तिक सूफी के लिए मुकामे-हक है तो नास्तिक बुद्ध के लिए महासुख और महाकरूणा भी यही है।

धर्म की अनुभूति

जब किसी देश या धर्म में नास्तिकता, स्थूलता या धार्मिक कट्टरपन बढ़ते हैं तो स्थूल ऊर्जा के साथ लोगों का योग भी बढ़ता जाता है। मनुष्य की बुद्धि भी स्थूल होती जाती है। ऐसे देश या धर्म में कुछ समय के बाद इन्टेलिजेन्शिया या बौद्धिक ज्ञान कम हो जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आध्यात्मिक शक्ति सूक्ष्मतम ताकत है। ज्यों-ज्यों आध्यात्मिक शक्ति के साथ व्यक्ति का योग बढ़ता है, त्यों-त्यों मन व बुद्धि बारीक होते जाते हैं और इतिहास गवाह है कि बुद्धि ने शरीर पर हमेशा राज किया है।

धर्म क्या है? अधर्म क्या है? क्या एक सीमित, पक्षपाती और परम्पराओं से बंधी हुई दष्टि धर्म और अधर्म का फैसला कर सकती है? हम सभी किसी न किसी नाम और रूप में बंधे हुए हैं। व्यक्तिगत दष्टि इसका फैसला कभी नहीं कर सकती। व्यक्ति का हित कभी नहीं साधा जा सकता जब तक अस्तित्व की अनदेखी की जाए। मनुष्य की उत्पत्ति के लिए अस्तित्व को अनेकों अग्नि-परीक्षाओं में से गुजरना पड़ा है जिसमें अरबों-खरबों वर्ष का समय लगा है। कुदरत को हमें पैदा करने के लिए सष्टि के यज्ञ में जीवन की कितनी आहुतियां देनी पड़ी हैं और अपनी पुरानी परम्पराओं को नष्ट करना पड़ा है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जिस माँ का गर्भ मनुष्य के अवतरण के लिए लाखों वर्ष तक सुरक्षा का कवच बना उसी प्रकति माँ की सम्पदा को कितनी बेरहमी से कुचला जा रहा है, इससे कोई भी अनजान नहीं है। अतः व्यक्ति के धर्म को निश्चित करने के लिए हमें अस्तित्व के ह्रदय की धड़कन से वाकिफ होना होगा तभी धर्म

की व्याख्या सर्वमान्य हो सकती है। धर्म क्या है? आज के संदर्भ में इसे समझने की आवश्यकता है।

अज्ञान व आसक्ति में लिपटा हुआ धर्म क्या वास्तव में धर्म है? व्यक्ति या किसी समुदाय के द्वारा निश्चित किया गया धर्म क्या सार्वभौमिक धर्म हो सकता हैं? गीता के चौथे अध्याय में कहा गया है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मनं सजाम्यहम।।

श्री कष्ण महाराज अर्जुन को कहते हैं कि हे भारत! जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की उन्नति होती है, तब तब मैं पापियों का नाश करने के लिए प्रकट होता हूं। यहूदी धर्म में आज तक यही मान्यता है कि मसीहा आएंगे, पापी और अन्यायी लोगों का संहार करेंगे, तब परमात्मा के राज्य की स्थापना होगी। जीसस ने इसका विरोध करते हुए कहा कि परमात्मा किसी का संहार नहीं कर सकता। वह सबका पिता है, परम दयाल है, प्रेम सिन्धु है। मसीहा संसार में उसका पैगाम लेकर आता है, वह प्रेम व बन्धुत्व को बढ़ाने के लिए आता है। वह किसी की हत्या कैसे कर सकता है? जो हत्या करता है, किसी को मारता है वह हत्यारा होता है, वह परमात्मा का दूत कैसे हो सकता है? उसे किसी की हत्या करने की आवश्यकता नहीं है। वह पापियों का नहीं बल्कि पाप का नाश करता है। कुछ लोगों ने उन पर विश्वास किया और उनका अनुसरण करने लगे लेकिन जिन लोगों ने धर्म को अपना पेशा बना लिया था, उन्हें जीसस का यह उपदेश पसंद नहीं आया। उनके लिए शास्त्र की बात सर्वोपरि थी। इसलिए उन्हें क्रूस पर चढ़ा दिया गया।

व्यक्ति जो परमात्मा का जीवित शास्त्र ज्ञान है उसी ने धर्म शास्त्र और नीति शास्त्रों की रचना की है। शास्त्र समय की आवश्यकतानुसार उसी भाषा और ज्ञान में लिखे जाते हैं जिन्हें उस वक्त का मनुष्य समझ सके। जब समय आगे बढ़ जाता है तो वे शास्त्र और उनकी व्याख्या असंगत होने लगते हैं जिसके कारण उनके अन्दर विद्यमान मूल तत्व भी आंखों से ओझल होने लगता है, बुद्धि का विषय बनकर तत्व टुकड़ों-टुकड़ों में बंट जाता है। वर्तमान और अतीत में संघर्ष होने लगता है। अतीत हमारी धरोहर है, उसका अनुभव हमारे लिए अमुल्य है, सीखने का एक जरिया है। वर्तमान तक आने के लिए एक सीढ़ी है, लेकिन क्या अतीत सम्पूर्ण है? क्या सीढ़ी मंजिल बन सकती है? क्या अतीत हमारी आज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है? क्या धन्वन्तरी वैद्य सड़क के बीच पड़े आज के घायल लक्ष्मण का उपचार कर सकता है? क्या गुजरा हुआ व्यक्ति अपनी पत्नी के संसर्ग में आकर संतान पैदा कर सकता है? तो यह कैसे संभव है कि अतीत का संत या अवतार जो स्थूल देह का त्याग कर चुका है, वह आपके बुझे हुए दीपक को जला सके या आपका मार्ग दर्शन कर सके। यदि यह संभव होता तो विष्णु भगवान को श्री कष्ण के रूप में जन्म लेकर आने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे वैकुण्ठ में बैठकर ही कंस का संहार कर देते। उन्हें राम के रूप में पथ्वी पर जन्म लेकर आने की जरूरत नहीं थी। सूक्ष्म रूप से ही वे रावण का वध कर सकते थे।

जीसस ने अतीत की धारणाओं और अंधविश्वासों को बदलने की चेष्टा की। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी दयानन्द जैसे महात्माओं ने धर्म के नाम पर बंटे हुए समाज को संगठित किया तथा वेद-शास्त्रों

की समय के अनुसार नयी व्याख्या दी। समाज संगठित हुआ, देश में जागति आई जो आगे चलकर आन्दोलन का रूप बन गई और जिसने देश की आजादी में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। मेरे मुर्शिद ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि वक्त का राजा, वक्त का वैद्य और वक्त का संत सद्गुरू ही आदमी के काम आ सकता है और मनुष्य के दुःख व पीड़ा को समझते हुए उसकी जरूरत की पूर्ति कर सकता है।

अब चेतना की जागति का समय है। चाहे वह मन के स्तर पर है। हर व्यक्ति लम्बे समय तक एक अवस्था में नहीं रहना चाहता है। उसे जल्दी-जल्दी बदलाव चाहिए। अपने रहन-सहन, खान-पान आदि में नित-नया बदलाव चाहिए। उसकी असंतुष्टि बढ़ती ही जा रही है, लेकिन क्या यह उसकी गिरावट की निशानी है? कई व्यक्ति कहते हैं कि पिछला समय अच्छा था, जब एक व्यक्ति फैसला करता था तो सभी बेहिचक उसे स्वीकार कर लेते थे लेकिन आज की अवस्था भिन्न है। फैसला होते ही उसी क्षण उस पर सवालिया निशान लगने लगते हैं। क्या यह मनुष्य की चेतना की जागति का लक्षण है या उसके नैतिक मूल्यों का पतन है? यही है धर्म-अधर्म का संघर्ष। किसी चीज की जागति है तो दूसरी चीज का अवमूल्यन भी है। जब ज्ञान बढ़ता है तो अज्ञान का ज्ञान भी बढ़ता है। कम्प्यूटर पर बैठा हुआ वैज्ञानिक जब प्रोग्राम या सोफ्टवेयर तैयार करता है तो उसकी काट का ज्ञान भी उसे स्वतः हो जाता है। इसके लिये उसे अलग से प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जब किसान खेती करता है तो उसे खेती के अच्छे और बुरे पक्ष दोनों का ज्ञान होता है। अच्छाई-बुराई, ज्ञान-अज्ञान और धर्म-अधर्म, जब एक बढ़ता है तो दूसरा पक्ष स्वयं ही प्रकट होता चला जाता है। दोनों ही पक्ष हमारे आन्तरिक अनुभव की छाया हैं।

कोई कहता है कि आज सब कुछ अस्त-व्यस्त होता जा रहा है। पहले सब कुछ व्यवस्थित और निश्चित था लेकिन क्या चेतना का व्यवहार निश्चित किया जा सकता है? किसी स्थान पर पड़ी हुई अचेतन वस्तु दस-बीस साल तक उसी स्थान पर पड़ी रह सकती है, उसके व्यवहार में कोई बदलाव प्रतीत नहीं होता लेकिन एक व्यक्ति लगातार घंटा दो घंटा एक ही अवस्था में नहीं ठहर पाता है। जहां चेतना है वहां उछाल आना स्वाभाविक है। चेतना का व्यवहार निश्चित नहीं किया जा सकता है लेकिन एक वस्तु का व्यवहार अवश्य निश्चित किया जा सकता है। कम चेतनशील व्यक्ति का व्यवहार भी कुछ हद तक निश्चित किया जा सकता है लेकिन एक बुद्ध या संत का व्यवहार निश्चित नहीं हो सकता है क्योंकि वहां चेतना की उन्नत अवस्था है। एक संत जब किसी से बात करता है तो वह सामने वाले व्यक्ति की चेतना के स्तर पर उतरकर बात करता है वरना वह व्यक्ति उस संत की बात व अर्थ को नहीं समझ पाएगा। वह समय की आवश्यकता और जरूरत के अनुसार ही अपना भेद खोलता है और दूसरे व्यक्ति का मार्गदर्शन करता है लेकिन एक साधारण व्यक्ति की चेतना का व्यवहार एक सीमित दायरे में काम करता है। एक शराबी मनुष्य के व्यवहार के बारे में पहले से कहा जा सकता है। एक मूर्ख या हठी व्यक्ति के व्यवहार की भविष्यवाणी की जा सकती है क्योंकि उनके विचार का क्षेत्र या रेंज बहुत सीमित होता है, लेकिन एक संत या बुद्ध के मन की गति को नहीं पकड़ा जा सकता है। अतः धर्म और धर्मनिष्ठा के प्रश्न को ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, अन्तर्मानसिक और अतिमानसिक स्तर पर समझने की जरूरत है तभी धर्म के वास्तविक अर्थ को समझा जा सकता है।

'धर्म' शब्द 'ध' धातु से निकला है। 'ध' का अर्थ है धारण करना। इस अर्थ के अनुसार धर्म की परिभाषा व्यक्ति और समय के साथ बदल जाती है। जो कुछ मनुष्य धारण करता चला जाता है शरीर पर, प्राण पर, मन व बुद्धि पर, वही उसके लिए धर्म बन जाता है। सच्चा धर्म एक जिन्दा अनुभव है। वह अतीत का निर्जीव अनुभव नही हो सकता। जो आत्मा की उन्नति में सहायक हो वही धर्म है। जो जीवन मूल्यों की स्थापना में सहायक हो वही धर्म है। जो आपस में प्रेम पैदा करे वही धर्म है। एक जीव का दूसरे जीव के प्रति प्रेम धर्म है। जो धर्म एक इंसान व दूसरे इंसान के बीच नफरत पैदा करे वह धर्म कैसे हो सकता है? धर्म जीवन है और जीवन ही चेतना है, वही परमात्मा है और जो धर्म जीवन को नष्ट करे वह धर्म कैसे हो सकता है? वह परमात्मा का अंग कैसे हो सकता है? जीसस, राम, कष्ण, हजरत मोहम्मद आदि के नाम पर हिंसा करना धर्म कैसे हो सकता है?

विज्ञान कहता है कि आज का मानव आदि मानव की संतान है। आदम जात का जन्म लगभग बीस लाख वर्ष पूर्व माना गया है। पहले उसका जीवन पशुओं के समान था। उसके पास न घर था, न पहनने के लिए कपड़े और न ही खाने के लिए अन्न था। वह फल-फूल, कन्द आदि खाता था। उसका मुख्य भोजन पशु-पक्षियों का मांस था। वह शिकार करता था और जो मिल जाता उसे मार कर कच्चा ही खा जाता था। फिर अग्नि की खोज हुई और वह उस मांस को पका कर खाने लगा। उसका स्वभाव, उसकी प्रकति पशुओं जैसी थी। विज्ञान यह भी कहता है कि मनुष्य का विकास पशुओं से हुआ है इसलिए वह आरम्भ में पशुओं की तरह तथा पशु-पक्षियों के संग

रहता था। उसकी चेतना का धर्म मांस-मिट्टी खाकर विकास करना था। उसके पास सोचने के लिए बुद्धि नहीं थी। उसके अन्दर स्थूल तत्व अधिक था। उसकी आत्मा में स्थूलता का अंश अधिक था इसलिए उसका भोजन भी स्थूल ही था। स्थूल व्यक्ति की खुराक भी अधिक होती है। जाहिर है वह पशुओं की तरह खाता भी अधिक था।

शरीर की खुराक स्थूल है और मन की सूक्ष्म। शरीर का धर्म मन के धर्म से भिन्न है और मन का धर्म आत्मा के धर्म से भिन्न है। इनका संघर्ष हमेशा चलता रहता है। धर्म-अर्धम दोनों हमारा ही अंग हैं और दोनों ही मानसिक अवस्थाएं हैं। हमारे अंदर एक अंग का धर्म दूसरे अंग के लिए अधर्म है। बच्चे का शरीर बहुत तेजी से विकास करता है क्योंकि उसका मन अविकसित अवस्था में होता है। जब मन की चेतना उभार पर आने लगती है तो शरीर का विकास धीमा हो जाता है। यदि मन को शरीर से निकाल दिया जाये तो शरीर की आयु एक पत्थर की तरह लाखों वर्ष हो सकती है।

शरीर अपने विस्तार के लिए स्थूलता की तरफ भागता है, इन्द्रियों के भोग की तरफ भागता है क्योंकि शारीरिक चेतना पाशविक चेतना है। बाहरी चेतना है अर्थात वासना का दूसरा रूप है। यह आत्मा की चेतना का सबसे बाहरी अंग है। शरीर आत्मा का स्थूल और मन उसका सूक्ष्म धर्म है। जब मन का धर्म जागता है अर्थात् वह विकसित होना चाहता है तो शरीर को सयंमित होना पड़ता है। व्यक्ति को शरीर के संकल्प को भूलना पड़ता है तभी ज्ञान की ऊँचाईयों पर चढ़ा जा सकता हैं लेकिन इसमें दमन नहीं बल्कि समझ के साथ सयंम होना चाहिए। जब मन अर्थपूर्ण विकास पर लगता है तो शरीर स्वयं ही उसका साथ देने लगता है और उसके कार्यो में सहभागी बन जाता है।

जब आत्मा का धर्म जागता है तो शरीर और मन दोनों ही सयंमित होते चले जाते हैं। वासना दष्टि और मन के ज्ञान-विज्ञान स्वयं ही गिरते चले जाते हैं। इन्हें मारना नहीं पड़ता बल्कि इनकी पूर्ति होती जाती है। इनका रूपान्तरण होने लगता है। ये खुशी के साथ अपना संकल्प छोड़ते चले जाते हैं। मन व विचारों की भाग-दौड़ एक बिन्दू पर आकर दोनों आंखों के मध्य में केन्द्रित होने लगती है जिसे तीसरा तिल, आज्ञा चक्र, दर्शन केन्द्र या तीसरी आँख कहा गया है। आज्ञा चक्र पर एक वैक्यूम या खालीपन पैदा होने लगता है जिसे भरने के लिये आत्मा की चेतना को उतरना ही पड़ता है। यह चेतना कोई विचार नहीं है, मन नहीं है, शरीर नहीं है, बल्कि आत्मा का प्रकाश या नूर है जिससे हमारा शरीर, प्राण, मन व बुद्धि निर्मित होते हैं और उसी के सहारे इनका कार्य चलता रहता है।

अतः इस भौतिक संसार में यदि व्यक्तियों का धर्म अलग-अलग है तो हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों का धर्म भी एक दूसरे से अलग है। एक स्तर का धर्म दूसरे स्तर के लिये अधर्म है लेकिन एक दूसरे के विकास के लिए आवश्यक भी है। एक-दूसरे का पूरक है तो एक दूसरे का विरोधी भी है। एक अंग के लिए ऊर्जा या चेतना का जो व्यवहार वाद है अर्थात् थिसेस है दूसरे स्तर के लिये वही प्रतिवाद है, एण्टिथिसेस है और तीसरे के लिए वही संवाद (सिंथेसिस) बनकर विराजमान है। यही प्रकति का नियम है और अनेकता के स्तर पर चेतना के विकास की आवश्यकता भी है। यही है हिगल का द्वन्द्वात्मक या डायलेक्टिव सिद्धान्त। इस सिद्धान्त का प्रयोग कार्ल मार्क्स ने स्थूल या भौतिक संसार में समाजवाद की व्याख्या करने के लिये किया। इसी को हिगल ने मानसिक स्तर पर आईडियलिज्म या

प्रत्ययवाद के रूप में स्थापित किया तो इसी सिद्धान्त को आधार बनाकर श्री अरविंद ने अतिमानसिक (सुपरमाइण्ड) स्तर पर अस्तित्व का भेद खोलने की चेष्टा की और जन्म हुआ संसार के तीन महानतम दार्शनिकों का। एक ने स्थूल, दूसरे ने मानसिक तो श्री अरविन्द ने आत्मिक स्तर पर इसकी उपयोगिता सिद्ध की।

जब चेतना शरीर के स्तर पर कार्य करती है तो इसकी आवश्यकता बदल जाती है। आदि मानव के समय इसका विकास मुख्य रूप से शारीरिक विकास था। बुद्धिजीवी व्यक्ति का विकास बहुत बाद में जाकर आरम्भ हुआ। आज का मनुष्य अनजाने ही मानसिक और आध्यात्मिक विकास की तरफ जाने के लिए प्रयत्नशील है इसलिए उसके शरीर के विकास में बाधाएँ आने लगी हैं। वह पेट भरकर खाना नहीं खा सकता है। भारी खाना (मांस आदि) उसे हज्म नहीं होता है। इसे हज्म करने के लिए उसे बनावटी पेय पदार्थो जैसे शराब व दूसरे टानिक आदि पर निर्भर रहना पड़ता है। चालीस वर्ष से ऊपर की आयु का हर बुद्धिजीवी व्यक्ति किसी न किसी बीमारी से पीड़ित है। कोई वायु रोग से तो कोई पित्त या कफ रोग से पीड़ित है। उसकी अधिकतर ऊर्जा दिमाग में प्रयोग हो रही है। वह अब शरीर से नहीं दिमाग में भाग रहा है। मनुष्य का दिमाग जागति और स्वप्न में भी भीड़ से भरा रहता है। वह सोते-जागते भीड़ में रहता है। इसलिए सुख के साधन बढ़ते हुए भी वह दुःखी है क्योंकि वह शरीर से दूर जा रहा है। स्थूलता से सूक्ष्मता की तरफ दौड़ रहा है। ज्यों-ज्यों वह और अधिक सूक्ष्म होता जाएगा उसकी स्थूल खुराक कम होती जाएगी। स्थूल खाना उसे हज्म नहीं हो सकेगा। शारीरिक और मानसिक दुःखों को भुलाने के लिए अब

वह ऐसे नशों की तलाश कर रहा है जिसे लेते ही वह तुंरत बेहोश हो जाए जो शारीरिक मत्यु का लक्षण है।

अतः स्पष्ट है कि कल की चेतना का जो धर्म था वह आज खो चुका है। वही आज का अधर्म बन चुका है। इसलिए अतीत का ज्ञान उसकी पूर्ति नहीं कर सकता है। वैदिक समय में जिन देवताओं की पूजा की जाती थी आज वे बदल चुके हैं। उनका स्थान दूसरे देवताओं ने ले लिया है क्योंकि परिवर्तन ही भौतिक चेतना का धर्म है। हमारा शरीर, हमारा मन पल-पल बदल रहे हैं लेकिन फिर भी हम पुराने रूढ़ीवादी संस्कारों, मत धारणाओं को छोड़ते हुए डरते हैं। ये संस्कार या धारणाएं मन का संकल्प हैं, मन का धर्म हैं। आज का मनुष्य जब शांति की तलाश में भटकता है और किसी गुरू या महात्मा के पास जाता है तो सबसे पहले उसकी कमी को देखता है। एक गुरू पर अधिक समय तक उसका विश्वास नहीं टिकता है। बार-बार वस्तु की तरह उसे भी बदलना चाहता है इसलिए उसकी आवश्यकतानुसार गुरूओं की भीड़ भी बढ़ गई है। जो स्वयं नहीं कमा सकता है वह या तो राजनेता बनना चाहता है या आध्यात्मिक गुरू। आश्रम, मठ, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर और राजनेताओं के दरबार में बिना मांगे चढ़ावा चढ़ता है क्योंकि मनुष्य को शांति चाहिए ताकि वह इस संसार की दौड़ में भागता भी रहे और उसे मन की शांति भी मिल सके। दिन भर की दौड़ धूप के बाद, सारा दिन झूठ बोलने के बाद, गलत काम करने के बाद सोने से पहले वह प्रार्थना करना चाहता है ताकि रात को चैन की नींद सो सके। उसके पास मन्दिर जाने का समय भी नहीं है इसलिए वह घर में ही अलग से मन्दिर की स्थापना कर रहा है। वह गुरू का

चुनाव भी अपनी सोच व शर्तो के साथ करना चाहता है। अपने मस्तिष्क में गुरू का सांचा बनाता है तब वह किसी के पास जाता है गुरू धारण करने के लिए। यदि उसके सांचे में कोई व्यक्ति फिट बैठ जाता है तो उसे वह गुरू धारण करता है, फिर थोड़े दिन उस गुरू की सोहबत करने के बाद उसका सांचा बदल जाता है क्योंकि ज्ञान का कोई निश्चित सांचा नहीं बन सकता है। ज्ञान बुद्धि का अंग है और बुद्धि की नापतोल से बनाया गया गुरू भी अनिश्चित सिद्ध होता है। कबीर साहब कहते हैंः

ये तो घर है प्रेम का खाला का घर नांह।
शीश काट पग तलै धरै तब पहुंचे वहां।।
ये तो घर है प्रेम का ऊँचा अधिक एकंत।
शीश काट पग तलै धरै तब पहुंचे कोई संत।।

गुरू धारण करना एक आकस्मिक घटना होती है। गुरू धारण करना हृदय का विषय है, प्रेम का विषय है। जब भी ऐसे व्यक्ति के पास जाते हैं तो दिल स्वतः ही बहने लगता है। शब्द समाप्त होने लगते हैं, प्रेम की धारा बहने लगती है।

नास्तिकता स्थूलता का दूसरा नाम है। इसमें किसी सूक्ष्म अस्तित्व या अतीन्द्रिय अनुभव को स्वीकार नहीं किया जाता है। नास्तिक व्यक्ति के लिए पदार्थ ही सत्य है, द्रव्य की प्राप्ति ही उसका परम लक्ष्य है अर्थात् स्थूल संसार के साथ योग करना ही उसका लक्ष्य है। यदि स्थूल वस्तुओं के साथ योग किया जाएगा तो स्थूल वस्तुओं की निर्जीवता का गुण व्यक्ति के अन्दर आने लगता है। जैसी संगत वैसी रंगत। नास्तिक व्यक्ति की स्थूल खुराक भी बढ़ती चली जाती है।

जब किसी देश या धर्म में नास्तिकता, स्थूलता या धार्मिक कट्टरपन बढ़ते हैं तो स्थूल ऊर्जा के साथ उनका योग भी बढ़ता जाता है। मनुष्य की बुद्धि भी स्थूल होती जाती है। ऐसे देश या धर्म में कुछ समय बाद इन्टेलिजेन्शिया या बौद्धिक ज्ञान कम हो जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आध्यात्मिक शक्ति सूक्ष्मतम ताकत है। ज्यों-ज्यों आध्यात्मिक शक्ति के साथ योग बढ़ता है या उसका विकास होता है त्यों-त्यों मन व बुद्धि बारीक होते जाते हैं और इतिहास गवाह है कि बुद्धि ने शरीर पर हमेशा राज किया है। आज सभी धर्मो में धार्मिक कट्टरपन की प्रवति बढ़ रही है। कट्टरपन हमें एक दायरे से बाहर नहीं जाने देता। वहां कोई नई संभावना जन्म लेने से पहले ही दम तोड़ जाती है। यदि कोई मनुष्य नई संभावनातलाशने की कोशिश करता है तो उसे धर्म से बहिस्कत कर दिया जाता है।

ईसाई धर्म ने उस समय विकास किया जब बुद्धिजीवी सुधारवादियों ने स्वयं आगे आकर इसकी बुराइयों और पादरियों के भोगी जीवन को उजागर किया। उनकी बनाई हुई धारणाओं को खण्डित किया। कौंसिलियर आन्दोलन इसका एक उदाहरण है जो 14वीं शताब्दी में इटली से आरम्भ हुआ और 15वीं शताब्दी में यह आन्दोलन चरम सीमा पर पहुंच गया। इस आन्दोलन ने पादरियों और पोप को सयंमित जीवन जीने के लिए मजबूर किया। चर्च के विशाल साम्राज्य को मुट्ठीभर लोगों ने चुनौती दी लेकिन इटली और फ्रांस के आन्दोलनकारियों में उचित तालमेल न होने के कारण और चर्च के अत्यधिक मजबूत होने के कारण यह आन्दोलन दम तोड़ गया। यह आन्दोलन चर्च और उसकी संस्था के वर्चस्व को तोड़ तो नहीं पाया लेकिन इसने चर्च के एकाधिकार, अंधविश्वासों और मत

धारणाओं को काफी हद तक कम किया। ईसाईयत के कट्टरपन को तोड़ने के लिए अनेक लोगों को संघर्ष करना पड़ा, कष्ट सहने पड़े। उन्हें सताया गया और उनके साहित्य के प्रकाशन पर पाबंधी लगा दी गई लेकिन ज्यों ही पादरियों का वर्चस्व टूटा, धर्म की पक्षपाती दीवारें क्षीण हुई और मनुष्य ने आकाश की ऊंचाइयों की तरफ नजरें उठाई तो उसके शरीर और मन में एक नयी चेतना दौड़ने लगी। उसके मन व बुद्धि जो सीमित दायरों की कैद में फंसे हुए थे अब स्वच्छंद छलांग लगाने के लिये तैयार थे। अब वह पादरी और उनके बनाए हुए चर्च के बारे में खुलकर बोल सकता था। अतः ईसाईयत का एक नए आयाम के अन्दर प्रवेश हुआ और बुद्धि ने अपने पंख खोलने आरम्भ किए। सर थामस इक्विनाश ने 13वीं शताब्दी में ईसाई धर्म को एक नया नजरिया प्रदान किया जिसकी परिणती हुई एक आंदोलन के रूप में जिसे सुधार या कौंसिलियर आन्दोलन या पुनर्जागरण के नाम से जाना जाता है। इसके साथ ही ईसाई धर्म में विज्ञान उन्नति करने लगा और वैज्ञानिकों तथा वैज्ञानिक खोजों की झड़ी लग गई। अधिकतर खोज व अविष्कार उन्हीं देशों में हुए जहा आध्यात्मिक विचारों का मंथन हुआ। इस मंथन में आक्सफोर्ड, फ्रांस और जर्मनी के विश्वविद्यालयों में अरस्तु और प्लेटो का दर्शन पुनः जीवित हो उठा था। इनका अध्ययन और अध्यापन कार्य पूरे जोरों पर था। ज्यादातर विचारक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और क्रांतिकारी मुख्य रूप से इटली, फ्रांस, इंग्लैण्ड और जर्मनी के या तो नागरिक थे या किसी न किसी रूप में इन देशों से जुड़े हुए थे।

धार्मिक कट्टरपन भी एक तरह का नास्तिक धर्म है। जहां खुलकर यह न कहा जा सके कि **'अहम् ब्रह्मास्मि'** अर्थात मैं ही ब्रह्म

हूँ, मेरा वजूद खुदा का वजदू है वह धर्म अध्यात्म की पूर्ण ऊँचाई प्राप्त नहीं कर सकता है। वह हमारे पैरों में बेड़ी डाल देता है और कहता है कि आप इससे ऊपर नहीं बोल सकते हैं। जब किसी ने मदर टेरेसा से पूछा कि मां आप इन कोढ़ियों को, इन बिमारों को और इनके गंदगी से भरे घावों को कैसे छू पाती हैं, मरीज और अपंग लोगों की सेवा कैसे कर पाती है तो मां ने कहा कि मुझे इनके अंदर जीसस दिखाई देता है, यह जीसस बीमार है, वह जीसस असहाय है। मैं उन्हें जीसस जानकर सेवा करती हूं। मुझे इनकी सेवा में दुःख नहीं अपार खुशी मिलती है, आत्म संतुष्टि मिलती है। काश वे यह भी कह पाती कि मेरे अंदर सेवा करने वाला भी जीसस ही है। जीसस की सेवा करते करते अब मुझमें और जीसस में कोई भेद नहीं रह गया है। मैं जीसस का रूप बन गई हूँ और उन्हीं में समा गई हूँ। या वे यह कह पाती कि सेवा करने वाला और सेवा करवाने वाला स्वयं जीसस ही है। मैं तो केवल साधन मात्र हूँ जिसे जीसस एक यंत्र के रूप में प्रयोग कर रहा है। वह अवश्य कह देती लेकिन ईसाई धर्म इसकी इजाजत नहीं देता। इस धर्म में आप एक हद तक बोल सकते हैं उससे ऊपर के अनुभव का वर्णन करने के लिए चर्च की मंजूरी चाहिए। उस चर्च की मंजूरी जहां धन-दौलत के खजाने भरे हुए हैं। चर्च संसार की सबसे अमीर संस्था मानी जाती है। एक ऊंट सूई के नाके में से गुजर सकता है लेकिन एक अमीर व्यक्ति परमात्मा के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता-जीसस का यह उपदेश आज की चर्च व्यवस्था के अंदर कितना अर्थपूर्ण रह जाता है इसका अन्दाजा सहज ही लगाया जा सकता है।

यदि मां ऐसा कह देती तो हो सकता था उन्हें ईसाईयत से निष्कासित कर दिया जाता लेकिन इससे ईसाई धर्म एक नए आयाम

में प्रवेश कर जाता, एक नया डायमेंसन खुल जाता। नामी से अनामी के अन्दर कूदने के लिए एक द्वार निर्मित हो जाता। रूपधारी का सहारा लेकर अरूपधारी जीसस में समाने का मार्ग खुल जाता। रूपधारी जीसस अरूपधारी और अनामी जीसस तक जाने का साधन बन जाता। जीसस जिनका रूप बनाकर ईसाई पूजा करते हैं, अनादि (शब्द) जीसस का एक जरिया मालूम पड़ता और धार्मिक द्वंद समाप्त करने में सहायता मिलती।

जब ईसाइयों ने रोम के सम्राट पर दबाव डाला कि जीसस के मसीहा होने की घोषणा की जाए तो सम्राट ने 325 ई० में एक कौंसिल का गठन किया जिसे कौंसिल आफ नीसा कहा जाता है, उसे यह फैसला करने का अधिकार दिया गया कि क्या जीसस वास्तव में मसीहा थे? उस कौंसिल में 319 बिशप (पादरियों) ने भाग लिया। इस सभा में फैसला दिया गया कि जीसस कोई व्यक्ति नहीं है। जीसस शब्द (वर्ड) है जो मनुष्य को परमात्मा से मिलाता है। यह शब्द रचना के आदि में भी था और हमेशा रहेगा। इसी शब्द ने सारी सष्टि की रचना की है। यही शब्द आदि में परमात्मा के साथ था और शब्द ही परमात्मा था। अशरीरधारी शब्द ही शरीरधारी जीसस के रूप में मरियम पुत्र बनकर इस संसार में प्रकट हुआ। नीसा परिषद का यह फैसला ईसाई धर्म के लिए विजय की घोषणा सिद्ध हुआ। स्पष्ट है कि सभी अवतार, औलिया, पीर, पैगम्बर उस अशरीरधारी अस्तित्व का नाम व रूप में मात्र प्रकटीकरण हैं। अनामी व इंटीग्रेटिड अस्तित्व का अलग-अलग नामों में विभाजन है। अनामी व अनादि अस्तित्व में समाने के लिए ये रूप केवल एक द्वार हैं जहां जाकर किसी भी रूप की अलग से पहचान नहीं है, अनडिफरेन्सिएटिड मास आफ बीऊटी

है। आनन्द और प्रेम का असीम सागर है जिसका कोई तट या थाह नहीं है। जिसका कोई गुण व आकार भी नहीं है। यह निर्गुण और निराकार भी नहीं है। केवल है, बस है अर्थात् स्वयं की स्वयं के अन्दर पूर्ति। इसलिये शिवव्रतलाल जी कहते हैं-

ना अपना नाम रखो ना नामों निशां रखो।
हो जाऊं गुम तो किसी को न मिले मेरी खबर।
मुझको खुद भी मेरी हस्ती की जुस्तजु न हो।

भारतीय धर्मों में सामुहिक चेतना की कमी रही है। यहां अपनी अपनी डफली अपना-अपना राग वाली कहावत ने काम किया है। धर्म-अधर्म का संघर्ष हमेशा चलता रहा है लेकिन यह संघर्ष एक सामुहिक चेतना बनकर कभी नहीं उभर सका। इस भूमि पर अनेक देवताओं, अनेक शास्त्र और भारी भरकम दर्शन की भरमार रही है। एक धर्म दूसरे धर्म या सम्प्रदाय से भिन्न विचार रखता है। धर्म के नाम पर हमेशा आपसी विभाजन रहा है जिसकी वजह से यह देश उन्नति नहीं कर सका। इसी विभाजन का लाभ उठाते हुए विदेशी आक्रमणकारियों ने यहां के लोगों को गुलाम बनाया और यहां की धार्मिक सम्पदा को हानि पहुंचाई। इसके अतिरिक्त यह देश विद्वानों का देश रहा है। उन्हें धर्म की आजादी रही है। दर्शन की जो बातें हजारों साल पहले कह दी गई थी उन्हें आज तक संसार नहीं समझ पाया है। चोर इकट्ठे बैठ सकते हैं लेकिन दो विद्वान व्यक्तियों का इकट्ठा रहना लगभग असम्भव है। यहां हर व्यक्ति का अपना देवता है। एक चोर या हत्यारे व्यक्ति के लिए भी यहां कोई ना कोई देवता मौजूद है। हर व्यक्ति की धर्म के मामले में अपनी स्वतंत्र धारणा है। इसका एक लाभ भी रहा है कि हिन्दू धर्म दूसरे धर्मों की तुलना में अधिक सहनशील रहा है और हर

धर्म को इज्जत का दर्जा देता रहा है। यहां धर्म की जितनी विविधता है, आजादी है उतनी किसी देश या धर्म में नहीं है। यही विविधता इसकी ऊंचाई का कारण भी है क्योंकि प्रकति स्वयं विभिन्नता और अनेकता के द्वारा विकास करती है। यदि अनेकता नहीं है तो विकास की गति में रूकावट पैदा हो जाती है या सीमित और अपंग विकास होता है। जब फसल के पौधों की कोई अच्छी किस्म निकाली जाती है तो वैज्ञानिक का सबसे पहला मकसद यही होता है कि अधिक से अधिक मात्रा में भिन्न-भिन्न गुणों वाले पौधे प्राप्त किये जाएं ताकि अच्छे पौधे का चुनाव किया जा सके। विचारों में जितनी अधिक भिन्नता होगी उतने ही अधिक अच्छे व उत्तम ज्ञान का संकलन हो सकेगा।

भिन्नता और अनेकता होना परमात्मा का मानव को एक वरदान है और इसी के द्वारा यह सष्टि आगे बढ़ रही है। जितने अधिक और भिन्न-भिन्न साधन आ रहे हैं मनुष्य उतना ही अधिक विकासशील होने लगा है। खेती के जितने अधिक साधन पैदा हो रहे हैं, आज का किसान उतना ही अधिक अन्न पैदा करने लगा है। यह सब विभिन्नता का ही परिणाम है और इसी से चेतना का विकास संभव है। अतः धर्म और ज्ञान की यही विभिन्नता इनकी ऊंचाई का कारण भी है लेकिन यदि इसे समझा न जाए तो यही विभिन्नता आपसी रंजिश और क्लेश का कारण भी बनती है। अंग्रेजी में एक कहावत है - Let us agree to disagree अर्थात् आओ हम असहमति के लिए सहमत हो जाएं, इसे समझकर ही इस विभिन्नता और अनेकता का लाभ उठाया जा सकता है लेकिन इस देश की शायद यही विडम्बना रही है कि अनेकता के इस मण्डल में रहते हुए अनेकता के आधार में एकता का सूत्र नहीं समझा जा सका है, जिसके कारण एक सामुहिक चेतना का विकास नहीं हो पाया और यह देश दर्शन की ऊंचाई पर होता हुआ भी अधिक विकास नहीं कर पाया और विदेशियों के हाथों गुलाम रहा।

सामुहिक चेतना के विकास में भक्ति युग का बहुत योगदान रहा। कबीर साहब के बाद सिक्ख गुरूओं ने इसमें महत्वपूर्ण सहयोग दिया। उसके बाद उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी भारत में स्वामी दयानन्द ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पूर्वी भारत में राजा राम मोहनराय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर और रामकष्ण परमहंस के बाद स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्र नाथ टैगोर और श्री अरविंद ने सामुहिक चेतना को जगाने में विशेष कार्य किया। यही कारण था कि पंजाब और बंगाल देश की आजादी में भी अग्रणी रहे। पंजाब में धर्म और सेवा का आधार फलता-फूलता रहा और देखते-देखते पंजाब राज्य विकास की दष्टि से सर्वश्रेष्ठ बन गया। दूसरी तरफ बंगाल आध्यात्मिक आधार ढहने के कारण विकास के रास्ते में पिछड़ता चला गया।

पदार्थ की लालसा हमें रास्ते से भटका देती है। बुद्धि को मलिन कर देती है। केवल स्वार्थ सर्वोपरि रह जाता है। अस्तित्व के हाथ से मनुष्य का हाथ छूट जाता है और वह पिछड़ता चला जाता है। स्वार्थ में मनुष्य का रिश्ता अस्तित्व व आसपास के वातावरण से टूट जाता है और नास्तिक व्यक्ति के लिए तो इस रिश्ते का कोई अर्थ ही नहीं रहता। वह अकेला होकर जीता है, वह वस्तुओं के संसार में रहता है और वस्तुओं को जोड़ने वाली एक आत्मा का दर्शन नहीं कर पाता है। इसलिए वह वस्तुओं या प्रकति का शोषण करने लगता है। एक दूसरे के प्रति व चारों ओर के वातावरण के प्रति प्रेम और संवेदनशीलता समाप्त होने लगते हैं तथा मन में निर्दयी भावना का समावेश होने लगता है। आसपास के वातावरण के दूसरे जीव उसका भोजन बनने लगते हैं। ऐसी प्रवति को लेकर पैदा होने वाला व्यक्ति या समाज संसार के लिए कितना घातक हो सकता है इसका सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। ऐसा व्यक्ति जो आत्मिक मूल्यों से खाली हो जाता है वह

आवश्यकता पड़ने पर अपने स्वार्थ के लिए दूसरे व्यक्ति का भक्षण भी कर सकता है। आज के समाज में ऐसे अनेकों उदाहरण हमारे सामने आ रहे हैं, ऐसा नहीं है कि ऐसा व्यक्ति या समाज उन्नति नहीं कर सकता है। उन्नति कर सकता है लेकिन यह उन्नति केवल आर्थिक उन्नति होती है जिसमें जीवन मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं होता है। व्यक्तिगत स्वार्थ सर्वोपरि होता है और उसमें प्रेम व शान्ति का सदा अभाव रहता है। ऐसा व्यक्ति या समाज समय की कसौटी पर बिखर जाता है।

अतः मनुष्य और समाज की वास्तविक उन्नति के लिए कोई भी मार्ग इतना सफल नहीं है जितना कि आध्यात्मिक मार्ग। जरूरत है सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ते रहने की। संसार में यदि कहीं भी कोई बरकत आरम्भ हुई है तो उसके आधार में अध्यात्म अवश्य रहा है क्योंकि यह एक चेतन ऊर्जा है, शक्ति है और ध्यान इस ऊर्जा के नवीनीकरण का मार्ग है। अध्यात्म मरी हुई ऊर्जा को जीवित करता है। उसे एक नयी दष्टि, विनम्रता व ऊंचाई प्रदान करता है। इसमें ध्यान या कन्सन्ट्रेशन द्वारा चेतना की गहराई में उतरना होता है जहां सभी संकल्प और पुराने संस्कार अस्तित्वहीन हो जाते हैं। केवल वर्तमान रह जाता है। व्यक्ति की चेतना विभिन्नता से हटकर एकता में जाकर समा जाती है। ध्यान व समाधि के द्वारा मनुष्य को ऐसी ऊर्जा के अन्दर घर करना होता है जो पदार्थ नहीं है बल्कि पदार्थ को पैदा करने वाली और उसे जीवन देने वाली शक्ति है। उसे कोई आत्मा कहता है तो कोई चेतना। कोई गुड कहता है तो कोई गोड।

जब ज्ञान और ज्ञानी लोग राजाओं के दरबार में आश्रय ढूंढते हैं तो वह समय धर्म की हानि का समय होता है। फिर राजाओं के कहने पर धर्म की परिभाषा बनाई जाती है। राजाओं को अवतार घोषित किया जाता है और महाभारत जैसे युद्ध की घोषणा होती है

जिसमें सर्वागीण विनाश का एलान किया जाता है। ईसाई धर्म की भी यही कहानी है। राजधर्म बनने के बाद पादरी राजाओं के दरबार में मंत्री बनने लगे और ऊंचे-ऊंचे ओहदे लेने लगे, राज्य के सारे कार्य उन पादरियों के कहने पर चलने लगे। उन्हें राजधर्म का ज्ञान नहीं था। वे सभी भोग के गुलाम होते चले गए। उसके बाद आरम्भ हुआ ईसाईयत का 'डार्क एज' अर्थात् अंधकार युग जिसमें जर्मन के बर्बरों ने ईसाई धर्म को पूरी तरह से तहस-नहस कर दिया जिससे उभरने में ईसाई धर्म को एक हजार वर्ष का समय लगा।

अतः चेतना का विकास धर्म-अधर्म का संघर्ष है। धर्म-अधर्म की इस लड़ाई में गरल भी निकलता है तो अमत का क्लश भी। ज्यों-ज्यों धर्म की ऊंचाई बढ़ती है त्यों-त्यों अधर्म की नींव भी गहरी होती जाती है। जैसे-जैसे ज्ञान का परिमाप बढ़ता है वैसे वैसे अज्ञान का जज्बा भी उफान पर आता है। जब-जब सत्य और अच्छाई का बीज अंकुरित होता है तब-तब असत्य और बुराई रूपी कांटा भी उन्हें सालता है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक दूसरे के विरोधी हैं तो एक दूसरे के पूरक भी हैं।

विकास की इस प्रक्रिया में ज्ञान के नित नए आयाम खुलते हैं। आज के समय में जो ज्ञान धर्म लगता है कल को वही अधर्म बनकर सालने लगता है। बच्चा जब शरीर के अन्दर जीता है तो शरीर का पोषण उसकी प्राथमिकता है और जब शिक्षा का अर्जन करता है तो वही उसका धर्म बन जाता है। उसे कभी शारीरिक तो कभी मानसिक धर्म का पालन करना पड़ता है लेकिन कल को जब उसे आत्मा की उज्जवलता और सुंदरता का अनुभव होता है तो उसका धर्म बदल जाता है। वह शरीर व मन के धर्म व

इच्छाओं पर अंकुश लगाने लगता है। उसकी धारणाएं और जीने का तरीका बदल जाता है। मनुष्य के लिए गन्दी हवा या कार्बन डाई आक्साइड अधर्म है अर्थात धारण करने योग्य नहीं है लेकिन पौधों के लिए वही परम धर्म है, सजनात्मक शक्ति है। पौधे का सड़ना पौधे के लिए अधर्म है लेकिन मिट्टी में रहने वाले असंख्य कीड़ों के लिए वही धर्म है, उनकी खुराक है, उनका जीवन है। व्यक्ति द्वारा फैंका गया भिष्टा उसके लिये अधर्म है लेकिन सुअर और दूसरे कीड़े-मकौड़ों के लिए वही जीवनदायक है। किसी आदमी की मत्यु उसके परिवार वालों के लिए अत्यंत दुःखदायी है लेकिन चील-कौओं और मिट्टी के जीवों के लिए वह मत शरीर संजीवनी है। वातावरण को शुद्ध और पवित्र रखने के लिए चील-कौए और दूसरे जीव भी अति आवश्यक हैं ताकि इसकी रक्षा की जा सके और अधिक समय तक मनुष्य को जीवन प्रदान किया जा सके तथा सष्टि का कार्य नियम से आगे बढ़ सके। यहां सभी जीव एक दूसरे के लिए कार्य कर रहे हैं। प्रकति माता के इस मण्डल में कुछ भी अनावश्यक नहीं है। विशाल दष्टि से यदि देखा जाए तो सभी जीव-जन्तु व्यक्ति के जीवन को सुखमय बनाने के लिए अपना-अपना योगदान दे रहे हैं। किसी जीव या प्राणी, सजीव या निर्जीव अस्तित्व के प्रति नफरत की भावना कितनी गैरजरूरी है इसका सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि धर्म-अधर्म के इस संघर्ष में धर्म की वास्तविक परिभाषा क्या हो जिसका आज के संदर्भ में औचित्य हो, जो सब जीवों का धर्म हो, उनके लिए हितकर और कल्याणकारी हो। जो मनुष्य के लिए जरूरी हो और वातावरण की रक्षा भी कर सके। वही

धर्म संजीदा और वायबल हो सकता है जो मनुष्य के अतिरिक्त पेड़-पौधों, कंकर-पत्थरों और सारे ब्रह्माण्ड के जीवन में भी व्याप्त हो। जो कण-कण का अंग हो और कण-कण में जीवन का संचार करता हो।

आज के संदर्भ में चेतना की अवस्था के अनुसार धर्म को तीन भागों में बांटा जा सकता है। एक है धर्मे-सफीना अर्थात् पुस्तक का धर्म जो पुस्तक या शास्त्रों के सफे पर वर्णन किया गया है। यह ऐतिहासिक धर्म है जिसका आज के जीवन से विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह बाहरी धर्म है, गैर जरूरी है और आज की चेतना की प्यास नहीं बुझा सकता है। कुछ लोग अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए इसका प्रयोग करते हैं और मनुष्य को मनुष्य से लड़ाते रहते हैं जिससे आपस में नफरत फैलती है। जो हकीम, हाकिम, अवतार या संत महात्मा इस संसार से जा चुके हैं वे हमारा मार्ग दर्शन नहीं कर सकते हैं। आज के दिन हमारी बिमारी वह नहीं है जो हजारों वर्ष पहले थी। अब हमारी आवश्यकता भिन्न है। आज के समय हमारे शरीर, मन व आत्मा की मांग अलग है। इसलिये वक्त की मेहर ही उसकी पूर्ति कर सकती है।

धर्म का दूसरा अंग है धर्मे-सीना अर्थात् सीने का धर्म, दिल या प्रेम का धर्म। यह व्यावहारिक धर्म है जो दिल को दिल से जोड़ता है। यह मानवता का धर्म है। जहां भी दिल की धड़कन है, जीवन है वहीं यह धर्म मौजूद है। प्रेम इसकी आवश्यकता है। सष्टि का कण-कण इसी प्रेम के कारण एक दूसरे कण व अस्तित्व के साथ लिपटा हुआ है और एक दूसरे के चक्कर काट रहा है। सारा ब्रह्माण्ड ही इसकी लपेट में आया हुआ है। पेड़-पौधे और पशु भी प्रेम के प्रति संवेदनशील हैं। उन्हें कोई शास्त्र, तीर्थ-स्थल या सत्संग प्रभावित नहीं करता है अपितु प्रेम उन्हें बिना प्रयास के ही अपनी तरफ खींच लेता है और उनकी बढ़वार में मदद करता है।

इसे विज्ञान भी सिद्ध करता है इसलिए यह दया और इंसानियत का धर्म है, यह खून (आत्मा) का धर्म है। यह ममता का धर्म है जो सिर्फ देना जानता है लेना नहीं। किसी भी जीव के प्रति नफरत के लिए इसमें कोई स्थान नहीं हैं। यह आंख बंद करके सीने में उतर जाने का धर्म है जबकि धर्मे-सफीना आंख खोलकर चलने का धर्म है। पूजा-पाठ, हवन-यज्ञ, तीर्थ-व्रत सभी धर्मे-सफीना का हिस्सा हैं और धर्म का बहारी अंग हैं जो मन को शांति नहीं देते बल्कि मन की व्यथा बढ़ाते हैं। व्यक्ति को अधिक चंचल बनाते हैं। उसे कर्मकाण्डी बनाते हैं जबकि धर्मे-सीना उसे कर्मयोगी बनाता है। जो व्यक्ति स्वयं के अन्दर परमात्मा की खोज नहीं कर सकता, आंख बंद करके अन्दर नहीं झांक सकता वही बाहर की तरफ भागता है जिससे चंचलता और मन की अस्थिरता को और अधिक बढ़ावा मिलता है। धर्मे-सफीना को एक सीढ़ी के रूप में प्रयोग किया जा सकता है लेकिन वह मंजिल नहीं बन सकता है। सत्संग भी धर्म का बाहरी अंग है लेकिन अन्दर के दर्शन के लिए एक जरिया भी है।

तीसरा अंग है धर्मे-आलम अर्थात् धर्मे-शाश्वत। यह परमार्थिक धर्म है, आत्मिक धर्म है। इसका लक्ष्य अन्तर में अनहद नाद सुनना है। आत्मा के संगीत को जागत करना हैं। संगीत शाश्वत धर्म है, सारी सष्टि की जान है। संगीत पत्थर में भी है, पेड़-पौधों, पशु-पक्षी, मनुष्य और यहां तक खाली आकाश में भी व्याप्त है। ब्रह्माण्ड की कोई जगह इससे खाली नहीं हैं। एक वैज्ञानिक को यदि पौधे, मिट्टी या पशु आदि के साथ मित्रता का संपर्क साधना है तो उसे इस धर्म में उतरना होगा। उनके अन्दर की कम्पन को जागति या सूक्ष्म में अनुभव करना होगा। उपनिषद् कहता है कि जो व्यक्ति इस अनहद नाद के साथ एकता स्थापित कर लेता है, प्रकति उसे अपना भेद देने लगती है। वह समय

की आहट के प्रति जागरूक हो जाता है। संगीत को सुनने से पौधे अधिक बढ़वार करने लगते हैं, पशु अधिक दूध देने लगते हैं और मनुष्य को स्वास्थ्य लाभ होने लगता है। पश्चिमी देशों में बिमारियों के इलाज के लिए संगीत का प्रयोग किया जा रहा है। विज्ञान कहता है कि जहां भी ऊर्जा है, वहीं गति है और जहां गति है वहां आवाज (शब्द) अवश्य होती है। ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां एक या दूसरे रूप में ऊर्जा न हो। बाइबिल के अनुसार शब्द अर्थात् वर्ड ही सम्पूर्ण सष्टि की रचना करता है, यही खुदा है और हमारे अन्दर हर समय धुनकारें दे रहा है। इसे ही नादब्रह्म, कलमा, अक्षरब्रह्म, उद्गीत, नादाय आसमानी, आवाजे मुस्तकीन आदि नामों से पुकारा गया है।

व्यावहारिक धर्म अर्थात् धर्मे-सीना के बिना धर्मे-शाश्वत का अनुभव नहीं हो सकता है। प्रेम की मजबूती के बगैर शाश्वत धर्म की अनुभूति नहीं की जा सकती है और जब एक बार इसकी अनुभूति होने लगती है तो धर्मे-सफीना और उसके सारे संस्कार स्वयं ही संकल्पहीन हो जाते हैं। सब जगह, सब प्राणियों और सारी सष्टि के अन्दर एक ही परम तत्व के दर्शन होने लगते हैं। सारा पसारा एक ही आत्मा का नजर आने लगता है। कण-कण में सतगुरू ही सतगुरू या परमात्मा ही परमात्मा नजर आने लगता है। वही कर्म करने वाला है, कर्म करवाने वाला और कर्मरूप के अन्दर भी वही स्थूल चोला पहनकर बैठा हुआ है। रथ भी वही है, रथवान और सारथी भी वही है। वही अश्व बनकर रथ को खींच रहा है तो वही धरा बनकर रथ को धारण किए हुए है। उसकी शक्ति भिन्न-भिन्न रूपों में स्वयं के साथ ही अटखेलियां कर रही है। एक ही चेतना कहीं अचेतन बनकर तो कहीं अवचेतन और महाचेतन बनकर सष्टि के कार्य को संभाल रही है। वही अति सूक्ष्म परमाणु

बनकर विराजमान है तो विशालकाय आकाशगंगाएं भी उसी के स्थूल रूप की अभिव्यक्ति हैं। सूक्ष्म और कारण रचना में भी वही शक्ति विराजमान है जो सबके अन्दर रहती हुई भी सबसे परे है। सब आकारों को धारण करते हुए भी निराकार और निर्गुण है। वही सत्य है तो वही सभी धर्मो की जनक है लेकिन कोई भी सत्य शास्त्र या धर्म ऐसा नहीं है जो उसकी गहराई को छू सके या उसकी थाह पा सके। उसे केवल अनुभव किया जा सकता है, उसके अन्दर जीया जा सकता है। ऐसी कोई भी वाणी या साधन नहीं है जो उस आनंद का वर्णन कर सके। केवल व्यावहारिक धर्म (धर्मे-सीना) अर्थात् प्रेम उस आंनद या अनुभव को समझने का एकमात्र निकटतम जरिया है जो इस संसार में रहते हुए संभव है क्योंकि प्रेम ही एक ऐसा साधन है जो सभी सीमाओं को पार कर सकता है, जो सभी धर्मो के पार जा सकता है और असीम व अनादि के अनुभव में जाने के लिए दिव्य द्वार बन सकता है। प्रेम के इस धर्म को कोई नाम भी नहीं दिया जा सकता है क्योंकि सभी नाम इसी की अभिव्यक्ति हैं, इसे केवल व्यवहार में जीया जा सकता है। यह शब्दों का विषय ही नहीं है इसलिए यह परमात्मा की सबसे निकट की अभिव्यक्ति है और जब यह बेहर्फ धर्म व्यवहार में उतर जाता है तो कोई भी व्यक्ति दूसरे की हानि नहीं कर सकता है, दूसरे से नफरत नहीं कर सकता है। क्षमा, सहनशीलता, दया, करूणा जैसे गुण जो धर्म के लक्षण हैं स्वयं ही व्यक्ति के अन्दर उतरने लगते हैं और ऐसे गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही सत्य के दर्शन कर सकता है, परमात्म रूप बन सकता है और जीते-जी साधर्म मुक्ति का अनुभव कर सकता है। धर्मे-शाश्वत की अनुभूति में जी सकता है।

राधास्वामी।

जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न

- क्या धर्म रोजी-रोटी दे सकता है?
- क्या अध्यात्म से दु:खों का छुटकारा हो सकता है?
- क्या अध्यात्म धन और आश्रमों का मोहताज हो गया है?
- क्या सत्संग केवल धन कमाने का साधन बन गया है?
- क्या धर्म देश और समाज को सुरक्षा दे सकता है?
- क्या धर्म बिखरे व्यक्तित्व और समाज को जोड़ सकता है?
- क्या परमात्मा अमीर लोगों की धरोहर बन गया है?
- अध्यात्म क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है?
- क्या अध्यात्म, विज्ञान और संसार एक दूसरे के विरोधी हैं?
- क्या शरीर, मन व आत्मा अलग-अलग हैं?
- कुण्डलीनी जागरण क्या है?
- अनहद शब्द व धुन में क्या अन्तर है?
- परम्परावादी और आत्मनिष्ठ धर्म में क्या अन्तर है?
- कर्मकाण्ड बन्धन व दु:ख का कारण क्यों बन जाता है?
- सभी धर्मों की उत्पत्ति मानसिक संसार से है, कैसे?
- अच्छी संगत से बुरे कर्म कैसे कट जाते हैं?
- सतगुरू सूली का दर्द सूल में कैसे बदल देता है?
- सिद्ध पुरूष की इच्छा शक्ति मजबूत क्यों हो जाती है?
- सृष्टि की प्रलय व शरीर की मृत्यु का क्या सम्बन्ध है?
- अभ्यास की अट्ठारह मंजिलें कौन सी हैं?
- क्या भाग्य को बदला जा सकता है?
- क्या मन व अंहकार वास्तव में बुरे हैं?
- अध्यात्म के लिए विशाल दृष्टि जरूरी क्यों?
- सुरत-शब्द योग का मार्मिक रहस्य क्या है?
- व्यक्तिगत अस्तित्व व ब्रह्माण्ड में कितनी समानता है?
- ध्यान से समस्याओं का समाधान कैसे मिलता है?
- ध्यान से संसार का विनाश भी हो सकता है, कैसे?
- प्रेतात्मा व देवात्मा के प्रकट होने का कारण व अर्थ
- उत्पत्ति व प्रलय का वैज्ञानिक व अध्यात्मिक आधार क्या है?
- नाम व ध्यान का विज्ञान क्या है?
- कामधेनू गाय व कल्ववृक्ष की प्राप्ति क्या है?
- असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति कैसे हो?

.....इत्यादि प्रश्नों के उत्तर जानिऐ?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र

पुस्तक सूची

1. सतगुरू ताराचन्द जी महाराज के 101 अनमोल रत्न
2. रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश
3. आत्मिक सफर और रूहानी मंजिलें (प्रश्नोतरी)
4. संत अवतरण
5. सम्यक समाधि : आत्मिक सफर की कहानी
6. पुरूष-प्रकृति
7. ईसा-मसीह कौन हैं?
8. युद्ध और जीवन दर्शन
9. अवतार अवतरण रहस्य
10. अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?
11. प्रेम और भक्ति का शिखर
12. सत्य और धर्म का अनुभव क्या इसी जन्म में संभव है?
13. टूटते रिश्ते बढ़ता अंधविश्वास व अध्यात्म
14. बच्चों पर सत्संग का प्रभाव
15. विश्व की समस्याएं और आध्यात्मिक समाधान
16. पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य
17. क्या धर्म, विज्ञान और संसार अलग-अलग हैं?
18. मनुष्य के लिए अध्यात्म जरूरी क्यों ?
19. आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य